राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

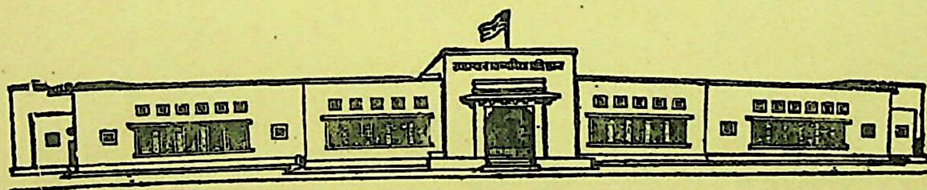
प्रबन्ध सम्पादक - डॉ० पुरुषोत्तमलाल मेनारिया
[उपनिदेशक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर]

ग्रन्थांक ११७

श्रीकल्याणनिर्मितम्

# बालतन्त्रम्

सम्पादक
कविराज श्री विष्णुदत्त पुरोहित



प्रकाशक
राजस्थान - राज्य - संस्थापित
राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान
जोधपुर (राजस्थान)
RAJASTHAN ORIENTAL RESEARCH INSTITUTE, JODHPUR.
1972

25-00

राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

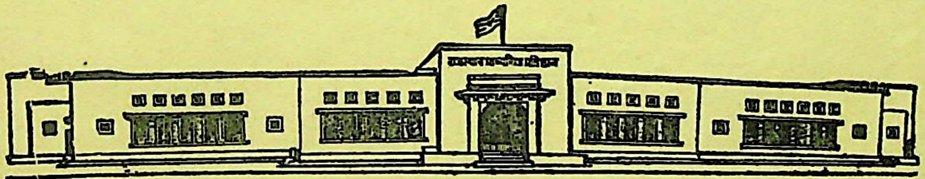
प्रबन्ध सम्पादक - डॉ० पुरुषोत्तमलाल मेनारिया
[उपनिदेशक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर]

ग्रन्थांक ११७

श्रीकल्याणनिर्मितम्

# बालतन्त्रम्

सम्पादक
कविराज श्री विष्णुदत्त पुरोहित



प्रकाशक
राजस्थान - राज्य - संस्थापित
राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान
जोधपुर (राजस्थान)
RAJASTHAN ORIENTAL RESEARCH INSTITUTE, JODHPUR.
1972

# राजस्थान पुरातन ग्रंथमाला

प्रबन्ध सम्पादक - डॉ० पुरुषोत्तमलाल मेनारिया
[उपनिदेशक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर]

ग्रन्थांक ११७


श्रीकल्याणनिर्मितम्

# बालतन्त्रम्


सम्पादक
कविराज श्री विष्णुदत्त पुरोहित



प्रकाशक
राजस्थान - राज्य - संस्थापित
**राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान**
जोधपुर (राजस्थान)
RAJASTHAN ORIENTAL RESEARCH INSTITUTE, JODHPUR.
**1972**

प्रथमावृत्ति १०००  मूल्य ३.५०

# राजस्थान पुरातन ग्रंथमाला

राजस्थान - राज्य द्वारा प्रकाशित

सामान्यतः अखिल भारतीय तथा विशेषतः राजस्थान प्रदेशीय-पुरातनकालीन
संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी, राजस्थानी आदि भाषा-निबद्ध
विविध वाङ्मय प्रकाशिनी विशिष्ट ग्रन्थावली

प्रबन्ध सम्पादक
डॉ० पुरुषोत्तमलाल मेनारिया
उप निदेशक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर

प्रकाशक
राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर (राज०)
१९७२ ई०

मुद्रक
राठी प्रिण्टर्स, जोधपुर एवं समयसार प्रेस, जोधपुर

वि० सं० २०२९  भारतराष्ट्रीय शकाब्द १८९४

# विषयानुक्रमणिका


| विषय | पृष्ठ |
|---|---|
| **प्रस्तावना** | **१-१३** |
| **सम्पादकीय भूमिका** | **१४ से** |
| **१. षोडशवन्ध्याप्रतीकार—** | **१-५** |
| **प्रथम पटल** | |
| गणपतिवंदना | १ |
| नारी व नर के दोष | १ |
| नारी-दोषों के आठ प्रकार | १ |
| पित्तहत पुष्प | १ |
| ,, की औषध-योजना | १-२ |
| वातहत पुष्प | २ |
| ,, की औषध-योजना | २ |
| श्लेष्महत पुष्प | २ |
| ,, की औषध-योजना | २ |
| सन्निपातहत पुष्प | २-३ |
| ,, की औषध-योजना | ३ |
| ग्रहपूजा | |
| देवकोप | ३ |
| वंध्याष्टक | ३ |
| आठों वंध्याओं के चिह्न | ३ |
| ,, ,, की चिकित्सा | ३-४ |
| गर्भधारक भोजन | ४-५ |
| **२. साधारणवन्ध्यौषधकथन—** | **५-८** |
| **द्वितीय पटल** | |
| हीनचिह्ना वंध्याओं का प्रतीकार | ५ |
| गर्भकरीवर्त्ति | ६ |
| शोधनकारीवर्त्ति | ६ |
| गर्भधारक योग | ६ |
| गर्भधारक घृत | ६ |
| गर्भवरप्रद एरण्डयोग | ६ |
| गर्भधारक कषाय | ६ |
| गर्भकर योग | ६ |
| ,, —पलाशपत्रयोग | ६ |
| ५ गर्भप्रद प्रयोग | ६ |
| पुत्रदाता तैल | ६ |
| गर्भप्रद योग | ७ |
| पुत्रदाता योग [१] | ७ |
| पुत्रदाता योग [२] | ७ |
| दौर्बल्यनाशक योग | ७ |
| अस्थिरगर्भा की चिकित्सा | ७ |
| मृतवत्सा की ,, | ७ |
| अल्पायु बालजन्म की ,, | ७ |
| गर्भनिरोध [१] | ७ |
| ,, [२] | ७ |
| गर्भधारक योग [१] | ८ |
| ,, [२] | ८ |
| **३. पुरुषवीर्यवृद्धिकथन—** | **८-१४** |
| **तृतीय पटल** | |
| शुक्रहीन पुरुष के लिये औषधप्रयोग | ८ |
| अक्षयशुक्र की औषध | ८ |
| अन्यान्य शुक्रवर्द्धक योग | ८-९ |
| शुक्रवर्द्धक तैल | ९ |
| महावातविध्वंस तैल (सर्वरोगहर तैल) | ९-१० |
| प्रयोगरत्नावली | ११ |
| सिद्धार्थक तैल | ११ |
| पिप्पल्यादिचूर्ण | ११ |
| वस्ताण्ड सिद्ध पेय | ११ |
| विदार्य्यादिचूर्ण | ११ |
| आमलकीचूर्ण | ११ |

| विषय | पृष्ठ |
|---|---|
| वृद्धों के लिये एक योग | ११ |
| उच्चटादिपेय | ११ |
| शतावर्य्युच्चटाचूर्ण | ११ |
| मधुकचूर्ण | ११ |
| मूशलीकदचूर्ण | ११ |
| वानरीपेय | १२ |
| गोक्षुरकचूर्ण | १२ |
| वराहीकंदचूर्ण | १२ |
| कामोद्दीपी वटक | १२ |
| लघुशाल्मल्यादिचूर्ण | १२ |
| वृद्धशाल्मलीपानक | १२ |
| सितवारिजचूर्ण | १२ |
| पलितांतक लेह | १२ |
| पौष्टिक चूर्ण | १२ |
| षण्ढत्वनाशी योग | १३ |
| रेतोवर्द्धक क्वाथ | १३ |
| सुदर्शन तैल | १३ |
| जातीफल वटक | १३ |
| वाजीकर लेप | १३ |
| वाजीकर दुग्ध | १३ |
| द्रावण लेप १ | १३ |
| ,, २ | १३ |
| सुभगावर्त्ति | १४ |
| प्रक्षालन | १४ |

**४. गर्भाधानकाल-रुद्रस्नान-कथन—चतुर्थ पटल** १४-१८

| | |
|---|---|
| रतिक्रिया का आरंभ | १४ |
| योग्य स्त्री | १४ |
| योग्य पुरुष | १४ |
| पितामाता सदृश पुत्र | १४ |
| पुत्र व कन्या-जन्म में हेतु | १४ |
| तीनों लिंगों की उत्पत्ति | १४ |
| गर्भधारण न करने का कारण | १४ |
| गर्भार्थ मंत्रदान | १४ |
| ,, मंत्र | १५ |
| ,, ,, जपसंख्या | १५ |
| ,, मंत्र की सिद्धि एवं औषधि-उत्पाटन | १५ |
| मंत्र द्वारा औषधप्राशन | १५ |
| नवाक्षर मंत्र | १५ |
| दशाक्षर मंत्र | १५ |
| सग्रहकार्य | १५ |
| संग्रहणकाल | १५ |
| औषधपरिचय | १५ |
| नस्य एवं पान | १६ |
| गर्भाधान | १६ |
| ,, की उपयुक्त तिथियां | १६ |
| गर्भाधानोत्तर विविध पूजा एवं क्रियाएं | १६ |
| मंत्रों द्वारा स्नान | १६ |
| रुद्रस्नान, पूजन, हवन, जाप आदि | १७ |
| भर्त्तुः प्रिया का विधिवत्-आचरण | १७ |
| क्षमापन | १८ |

**५. गर्भिणीगर्भरक्षा कथन— पञ्चम पटल** १९-२८

| | |
|---|---|
| गर्भस्थित बालक की रक्षा-व्यवस्था, बलि व मंत्र | १९ |
| प्रथम मास में प्रजापति को बलि | १९ |
| मंत्र | १९ |
| प्रथम मास में गर्भवेदना की चिकित्सा | १९ |
| दूसरा प्रयोग | १९ |
| द्वितीय मास में अश्विनीकुमारों को बलि | १९ |
| मंत्र | २० |
| द्वि० मास में गर्भ-वेदना की चिकित्सा | २० |
| दूसरा प्रयोग | २० |
| तीसरा प्रयोग | २० |
| तृ० मास में एकादशरुद्रों को बलि | २० |
| मंत्र | २० |

| विषय | पृष्ठ |
|---|---|
| प्रार्थना | २१ |
| तृ० मास में गर्भ-वेदना की चिकित्सा | २१ |
| च० मास में द्वादशादित्यों को बलि | २१ |
| मंत्र | २१ |
| प्रार्थना | २१ |
| च० मास में गर्भ-वेदना की चिकित्सा | २१ |
| पंचम मास में विनायक को बलि | २२ |
| प्रार्थना | २२ |
| पचम मास में बलि का प्रकार | २२ |
| मंत्र, प्रार्थना, गर्भ-रक्षा के तीन उपाय | २३ |
| छठे मास में आठ वसुओं को बलि | २३ |
| मंत्र | २३ |
| छठे मास में गर्भ-वेदना की चिकित्सार्थ दो प्रयोग | २३-२४ |
| औषधदान से पहिले धूपदान का निर्देश | २४ |
| औषधदान | २४ |
| सप्तम मास में स्कंदप्रभु को बलि एवं मंत्र | २४ |
| गर्भरक्षार्थ पहला प्रयोग | २४ |
| ,, दूसरा प्रयोग | २४ |
| ,, तीसरा प्रयोग | २४ |
| अष्टम मास में दुर्गादेवी को बलि | २५ |
| गर्भरक्षार्थ बलि-प्रकार | २५ |
| मंत्र | २५ |
| गर्भरक्षार्थ पहला प्रयोग | २५ |
| ,, दूसरा प्रयोग | २५ |
| नवम मास में देव-मातरों को बलि | २५-२६ |
| बलि-प्रकार | २६ |
| मंत्र | २६ |
| गर्भरक्षार्थ पहला प्रयोग | २६ |
| ,, दूसरा ,, | २६ |
| ,, तीसरा ,, | २६ |
| दशम मास में निकृत्तिदेवी को बलि | २६ |
| बलि-प्रकार | २६ |
| मंत्र | २६-२७ |

| विषय | पृष्ठ |
|---|---|
| गर्भरक्षार्थ पहला प्रयोग | २७ |
| ,, दूसरा ,, | २७ |
| ,, तीसरा ,, | २७ |
| ग्यारहवें मास में वासुदेव भगवान को बलि | २७ |
| बलि-प्रकार | २७ |
| मंत्र | २७ |
| गर्भरक्षार्थ पहला प्रयोग | २७ |
| ,, दूसरा प्रयोग | २७ |
| ,, तीसरा प्रयोग | २८ |
| बारहवें मास में ग्यारहवें मास के समान ही वासुदेव प्रभु को बलि | २८ |
| गर्भरक्षार्थ एक प्रयोग | २८ |
| **६ सुखप्रसवोपायकथन—** | **२८-३१** |
| **षष्ठ पटल** | |
| सुख-प्रसव के गोपनीय उपाय | २८ |
| करजबीजों का प्रलेप | २८ |
| लेपनमंत्र | २८ |
| कटिकामूल प्रलेप | २८-२९ |
| धत्तूरमूल का शिर में धारण | २९ |
| अन्य प्रयोग | २९ |
| अपामार्ग के मूल का धारण व प्रलेप | २९ |
| सर्पकंचुक-योग | २९ |
| श्वेत शरपुंख का योग | २९ |
| गुग्गुलु-धूप | २९ |
| इन्द्र वारुणीमूल-योग | २९ |
| कलिहारी-योग | २९ |
| अर्क-पुष्प-योग | २९ |
| सेफालीपत्र-योग | २९ |
| सुखप्रसव-लेप | २९ |
| लांगली-लेप | ३० |
| काकमाची-लेप | ३० |
| अन्य लेप | ३० |
| मयूर-मूलादि-लेप | ३० |

| विषय | पृष्ठ |
|---|---|
| शालपर्णी प्रलेप (मूल) | ३० |
| सर्पकंचुक-धूप | ३० |
| गुंजा का कटिबंधन | ३० |
| मातुलुंगमूल-योग | ३० |
| बलांशुमती-योग | ३० |
| अभ्यङ्ग कर्णातटपूरण | ३० |
| विमूढ़ गर्भ-चिकित्सा | ३० |
| सूतिकागार में रक्षा | ३० |
| अन्यान्य रक्षा के उपाय | ३१ |
| यवागूपान | ३१ |
| भोजन-विधान | ३१ |
| दक्षाधात्री व उसकी क्रिया तथा दानादि | ३१ |
| **७. दिनगृहीतबालग्रहहर—** | **३२-३५** |
| **सप्तम पटल** | |
| यथाक्रम बाल-रक्षा | ३२ |
| प्रथम दिवस में 'नन्दिनी' गृहीत बालरक्षा | ३२ |
| नन्दिनी के उपद्रव | ३२ |
| ,, मोचन के उपाय | ३२ |
| मांत्रिक वारि | ३२ |
| षड़क्षर मंत्र | ३२ |
| द्वितीय दिवस में 'सनन्दना' ग्रहगृहीत के लक्षण | ३३ |
| उपचार | ३३ |
| तीसरे दिन 'घंटाली' ग्रहगृहीत के लक्षण | ३३ |
| उपचार | ३३ |
| चौथे दिन 'कटकोली' गृहीत के लक्षण | ३४ |
| उपचार | ३४ |
| पाँचवें दिन 'हुंकारी' गृहीत के लक्षण | ३४ |
| उपचार | ३४ |
| छठे दिन 'ईषद्वायी' गृहीत के लक्षण | ३४ |
| उपचार | ३४ |

| विषय | पृष्ठ |
|---|---|
| सातवें दिन 'हिंसिका' गृहीत के लक्षण | ३४ |
| उपचार | ३४-३५ |
| आठवें दिन 'भीषणी' गृहीत के लक्षण | ३५ |
| उपचार | ३५ |
| नौवें दिन 'मेषा' गृहीत के लक्षण | ५ |
| उपचार | ३५ |
| दसवें दिन 'रोदना' क्रान्त बालक के लक्षण | ३५ |
| उपचार | ३५ |
| **८. मासगृहीतबालग्रहहर—** | **३६-३९** |
| **अष्टम पटल** | |
| प्रथम मास 'कुमारी योगिनी' गृहीत बाल-लक्षण | ३६ |
| मंत्रौषधियुक्त बलि प्रदान | ३६ |
| द्वितीय मासमें 'मुकुटा' गृहीत बाललक्षण | ३६ |
| उपचार | ३६ |
| तृतीय मास में 'गोमुखी' गृहीत बाल-लक्षण | ३६-३७ |
| उपचार | ३७ |
| चौथे मास में 'पिंगला' गृहीत बाल-लक्षण | ३७ |
| मंत्रौषधि एवं बलि का निषेध | ३७ |
| पांचवें मास में 'बड़वा' गृहीत के लक्षण | ३७ |
| उपचार | ३७ |
| छठे मास में 'पद्मा' गृहीत बालक के लक्षण | ३७ |
| उपचार | ३७ |
| सातवें मास में 'पूतना' गृहीत बालक के लक्षण | ३७ |
| उपचार | ३७-३८ |
| आठवें मास में 'अर्जिका' गृहीत बालक के लक्षण | ३८ |
| उपचार | |
| नवें मास में 'कुंभ कर्णिका' गृहीत बालक के लक्षण | ३८ |
| उपचार | ३८ |

| विषय | पृष्ठ |
|---|---|
| दशम मास में 'तापसी' गृहीत बालक के लक्षण | ३८ |
| उपचार | ३८ |
| ग्यारहवें मास में 'सुग्रही' गृहीत बालक के लक्षण | ३८ |
| उपचार | ३८ |
| बारहवें मास में 'बालिका' गृहीत बालक के लक्षण | ३९ |
| उपचार | ३९ |
| **९. वर्षगृहीतबालग्रहहर—नवम पटल** | **३९-४४** |
| प्रथमवर्ष में 'नन्दिनी' ग्रही गृहीत बालक के लक्षण | ३९ |
| उपचारार्थ बलिप्रदान | ३९ |
| धूपदान | ३९ |
| पञ्चगव्य का स्नान | ३९ |
| दूसरे वर्ष में 'रोदनी' गृहीत बालक के लक्षण | ३९ |
| उपचारार्थ बलिप्रदान | ३९ |
| धूपदान | ३९-४० |
| तीसरे वर्ष में 'धनदा' गृहीत बालक | ४० |
| उपचारार्थ बलिप्रदान | ४० |
| चौथे वर्ष में 'चंचला' गृहीत बालक के लक्षण | ४० |
| उपचारार्थ बलिप्रदान | ४० |
| पांचवें वर्ष में 'नर्त्तकी' गृहीत बालक के लक्षण | ४० |
| उपचारार्थ सात रातों तक बलिप्रदान | ४० |
| तीन रात्रियों तक धूपदान | ४० |
| छठे वर्ष में 'यमुना' गृहीत बालक के लक्षण | ४१ |
| उपचारार्थ बलिप्रदान | ४१ |
| धूपदान व स्नान | ४१ |
| सप्तम वर्ष में 'नर्त्तकी' गृहीत बालक के लक्षण | ४१ |
| उपचारार्थ, धूप, स्नान एवं बलि-प्रदान | ४१ |
| आठवें वर्ष में 'कुमारिका' गृहीत बालक के लक्षण | ४१ |
| उपचारार्थ बलिप्रदान | ४१ |
| नौवें वर्ष में 'कलहंसा' गृहीत बालक के लक्षण | ४२ |
| उपचाराथ पांच रातों तक बलिप्रदान | ४२ |
| दशवें वर्ष में 'देवदूती' गृहीत बालक के लक्षण | ४२ |
| उपचारार्थ तीन रातों तक बलिप्रदान | ४२ |
| बलिदान | ४२ |
| ग्यारहवें वर्ष में 'बालिका' गृहीत बालक के लक्षण | ४२ |
| उपचाराथ बलिप्रदान | ४२ |
| तीन रात्रियों तक धूपदान | ४२ |
| बारहवें वर्ष में 'वायसी' गृहीत बालक के लक्षण | ४२ |
| उपचारार्थ बलि, धूपन एवं स्नान | ४३ |
| तेरहवें वर्ष में 'यक्षिणी' गृहीत बालक के लक्षण | ४३ |
| उपचारार्थ बलिप्रदान | ४३ |
| चौदहवें वर्ष में 'स्वच्छन्दा' गृहीत बालक के लक्षण | ४३ |
| तत्रनास्ति प्रतिक्रिया | ४३ |
| पन्द्रहवें वर्ष में 'कपी' ग्रहीत बालक के लक्षण | ४३ |
| प्रदोषकाल में ३ दिनों तक बलिप्रदान | ४३ |
| पंचगव्य द्वारा स्नान एवं धूपन | ४३ |
| सोलहवें वर्ष में 'दुर्जया' गृहीत बालक के लक्षण | ४३-४४ |

| विषय | पृष्ठ |
|---|---|
| तीन दिनों तक बलिप्रदान | ४४ |
| स्नान एवं धूपदान व दीपदान | ४४ |
| **१०. दिन, मास, वर्ष बालग्रहोपाय-कथन—दशम पटल** | **४४-५१** |
| दिन, मास व वर्ष में बालशान्ति | ४४ |
| पहले दिन, मास वर्ष में योगिनी नन्दिनी व पूतनाक्रमित बालक के लक्षण | ४४ |
| मोचन-विधान | ४४ |
| मंत्र, जप, भोजन एव शान्ति जल-स्नान | ४४ |
| द्वितीय वर्ष, मास व दिवस में 'सुनंदन,' 'योगिनी' एवं 'पूतना' गृहीत बालक के लक्षण | ४५ |
| तीन दिन व्यापी उपचार | ४५ |
| मंत्र के द्वारा स्नान एवं धूपन | ४५ |
| तीसरे वर्ष, मास व दिवस में 'पूतना' गृहीत बालक के लक्षण | ४६ |
| उपचार, स्नान, धूपन एवं बलिप्रदान | ४६ |
| गृहशान्त्यर्थ मंत्र | ४६ |
| चौथे दिवस, मास व वर्ष में 'मुख-मण्डलिका' एवं 'पूतना' गृहीत बालक के लक्षण | ४६ |
| तीन संध्याओं में बलिप्रदान | ४६ |
| तीन दिनों तक प्रातः सायं धूपन व मंत्र-स्नान | ४६ |
| पांचवें दिन, मास व वर्ष में 'विडालिका' गृहीत बालक के लक्षण एवं उपचार | ४६-४७ |
| शान्ति के लिये मन्त्र | ४७ |
| छठे वर्ष, मास व दिन में 'द्वारिका' गृहीत बालक के लक्षण | ४७ |
| उपचार, धूप, दीप, लेप, स्नान एवं मंत्रोक्त बलिदान | ४७ |
| सातवें दिन, मास, वर्ष में 'कालिका' गृहीत बालक के लक्षण | ४७ |
| तत्रनास्ति प्रतिक्रिया | ४७ |
| आठवें दिवस, मास, वर्ष में 'कामिनी' ग्रही गृहीत बालक के लक्षण | ४८ |
| उपचार विधि :—बलि, धूप, दीप, स्नान आदि | ४८ |
| नौवें मास, वर्ष, दिवस में 'मदना' ग्रही गृहीत बालक के लक्षण | ४८ |
| उपचारप्रक्रिया, बलि, धूप, ध्वजारोहण | ४८ |
| मंत्र | ४८ |
| दशवें मास, वर्ष, दिवस में 'रेवती' देवी गृहीत बालक के लक्षण | ४८ |
| उपचारप्रक्रिया, बलि, धूप, ध्वजारोहण | ४९ |
| मंत्र | ४९ |
| ग्यारहवें दिवस, माम, वर्ष में 'पूतना' ग्रही गृहीत बालक के लक्षण | ४९ |
| उपचारप्रक्रिया, बलि, धूप, ध्वजारोहण, दीपदान | ४९ |
| मंत्र | ४९ |
| बारहवें दिवस, मास, वर्ष में 'पूतना' 'अद्भुताख्या' ग्रही गृहीत बालक के लक्षण | ४९ |
| उपचारप्रक्रिया, बलि, स्वस्तिक, धूप | ५० |
| मंत्र | ५० |
| तेरहवें दिवस, मास, वर्ष में 'भद्रकाली' गृहीत बालक के लक्षण | ५० |
| उपचारप्रक्रिया, बलि, देवी पूजा, पताका, दीपदान | ५० |
| मंत्र | ५० |
| चौदहवें दिवस, मास, वर्ष में 'योगिनी' ग्रही गृहीत बालक के लक्षण | ५० |
| तेरह प्रकार का बलिदान | ५०-५१ |
| पन्द्रहवें दिन, मास, वर्ष में 'योगिनी' ग्रही गृहीत बालक के लक्षण | ५१ |
| उपचार-प्रक्रिया | ५१ |

| विषय | पृष्ठ |
|---|---|
| सोलहवें दिवस, मास, वर्ष में 'पूतना' गृहीत बालक के लक्षण | ५१ |
| उपचारप्रक्रिया | ५१ |
| **११. साधारण बालग्रहाविष्टे-चेष्टोद्वर्तन स्नानधूपादि विधान एकादश पटल** | **५२-५७** |
| बालकों की हित-कामना के लिये साधारण बलि | ५२ |
| 'पूतना' गृहीत बालक के लक्षण | ५२ |
| खेल के मैदान में बलिदान | ५२ |
| मंत्र | ५२ |
| ग्रन्थ-रचनाकाल | ५२ |
| ग्रन्थकार का परिचय | ५२ |
| ग्रन्थ-लेखनकाल | ५२ |
| महापूतनाग्रहहर—लक्षण एवं तान्त्रिक उपचार | ५३ |
| घटस्थापन का मंत्र | ५३ |
| अथोर्द्ध्वपूतना के ग्रहण की भूमिका | ५३ |
| लक्षण | ५३ |
| घटस्थापन का मंत्र | ५३ |
| बालाक्रांतग्रह एवं उपचार | ५३ |
| बालकाख्यग्रह एवं लक्षण | ५३ |
| वटक्षेत्र में घटस्थापन | ५३ |
| मंत्र | ५४ |
| 'रेवती' गृहीत बालक के लक्षण | ५४ |
| कुंभस्थापन | ५४ |
| मंत्र | ५४ |
| प्रकारान्तर रेवतीगृहीत के लक्षण | ५४ |
| वटमूल में घटस्थापन | ५४ |
| मंत्र | ५४ |
| पुष्प रेवती' गृहीत बालक के लक्षण | ५४ |
| किसी भी पुण्यायतन में घटस्थापन | ५५ |
| मंत्र | ५५ |
| शुष्करेवती गृहीत बालक के लक्षण | ५५ |
| मंत्र | ५५ |
| शकुनिग्रह-हर | ५५ |
| लक्षण, श्मशान में घटस्थापन | ५५ |
| मंत्र | ५५ |
| शिशुमुंडिका—लक्षण | ५५ |
| पुरातनवटाभ्यर्ण में घटस्थापन | ५६ |
| मंत्र | ५६ |
| सामान्य बालग्रहाविष्टचेष्टोद्वर्त्तन स्नान, धूप, मंत्र | ५६ |
| यंत्र | ५६-५७ |
| **१२. ज्वरहरणोपायकथन—द्वादश पटल** | **५७-६४** |
| क्षीरोत्पादन के कई साधन | ५७ |
| धात्री-नियुक्ति | ५७-५८ |
| धात्री-लक्षण | ५८ |
| धात्री-योग्यता | ५८ |
| अयोग्य धात्री का निषेध | ५८ |
| स्तन्यशुद्धि | ५९ |
| रुदन तथा मुख की वर्णता से रोगों की परीक्षा | ५९ |
| नाभिपाक के लक्षण | ५९ |
| नाभिपाक के शमनोपाय | ५९-६० |
| गुदपाक | ६० |
| गुदपाक-चिकित्सा | ६० |
| मुखपाक | ६० |
| बालकों की दृष्टिदोष से रक्षा का निर्देश | ६० |
| ज्वर-चिकित्सा | ६० |
| वातज्वर-चिकित्सा | ६१ |
| पित्तज्वर-चिकित्सा | ६१ |
| श्लेष्मज्वर-चिकित्सा | ६१ |
| कट्फलादि लेह | ६१ |
| पुष्कर चूर्ण | ६१ |

| विषय | पृष्ठ |
|---|---|
| चतुरामृत | ६२ |
| पौष्टिकचूर्ण | ६२ |
| वातपित्तज्वर-चिकित्सा (रक्तपित्त) | ६२ |
| पित्तश्लेष्मज्वर-चिकित्सा | ६२ |
| अमृताष्टक | ६२ |
| शीतकषाय | ६३ |
| वासकरस-प्रयोग | ६३ |
| आरग्वध क्वाथ | ६३ |
| चातुर्भद्रक | ६३ |
| मुद्गतंडुलयूष | ६३ |
| संमोह-तन्द्रा की चिकित्सा | ६३ |
| समस्त दोषज्वर-चिकित्सा | ६३ |
| समस्त ज्वरों में कषाय | ६३ |
| शीतज्वर-विनाशी एक प्रयोग | ६३ |
| „ „ दूसरा प्रयोग | ६३ |
| एकाहिकज्वर-चिकित्सा | ६३ |
| शोणितबंध व मूत्रबंध की चिकित्सा | ६३ |
| एकाहिकज्वर-नाशी अञ्जन | ६३ |
| सततज्वर-चिकित्सा | ६४ |
| तृतीयकज्वर-चिकित्सा | ६४ |
| सर्वग्रहघ्नधूप | ६४ |
| ज्वरघ्नधूप | ६४ |
| निर्गुण्डी व सहदेवी जटाबंधन | ६४ |
| एकाहिक में अपामार्ग की जटा का बंधन | ६४ |
| सर्वज्वरहरी रविवार को धारण की हुई श्वेततुरंग-मूली | ६४ |
| सर्वज्वरहरी श्वेतमंदार-मूली | ६४ |
| पाणिस्थ वृकवृन्दाक-प्रयोग | ६४ |
| **१३. शीतलाचिकित्साकथन—त्रयोदश पटल** | **६५-७४** |
| बालातीसारहरयोग | ६५ |
| „ „ अवलेह | ६५ |
| अतीसारहरकषाय | ६५ |
| „ अवलेह | ६५ |
| सर्वातिसारजित्योग | ६५ |
| पटोलमूलादिचूर्ण | ६५ |
| आमहर-सुलभयोग | ६५ |
| „ अन्ययोग | ६५ |
| मुस्तादिचूर्ण | ६५ |
| ज्वरातीसार व स्तनदोषजित्-कषाय | ६५ |
| धान्यकादि लेह | ६५ |
| धातकी लेह | ६५ |
| ग्रहणीहर यवान्यादिलेह | ६५ |
| पिप्पली-अवलेह | ६५ |
| वातज ग्रहणी की चिकित्सा | ६६ |
| कफज ग्रहणी की चिकित्सा | ६६ |
| त्रिदोषज ग्रहणी की चिकित्सा | ६६ |
| मुस्तकादि-लेह | ६६ |
| अर्शोहर यवानीचूर्ण | ६६ |
| अजाजीगुड़िका | ६६ |
| रक्तार्श की चिकित्सा | ६६ |
| रक्तार्शहर-योग | ६६ |
| रक्तार्शहर-योग | ६६ |
| रक्तार्शहर-योग | ६६ |
| शूलामाजीर्ण-चिकित्सा | ६६ |
| विसूचिका-चिकित्सा | ६६ |
| भस्मक-चिकित्सा | ६७ |
| औदुम्बरत्वचा का भस्मक में प्रयोग | ६७ |
| भस्मकहर तीन सुलभ योग | ६७ |
| छर्दि-चिकित्सा | ६७ |
| छर्दिनाशक यवानी लेह | ६७ |
| „ चन्दनादि चूर्ण | ६७ |
| „ हरीतकी चूर्ण | ६७ |
| अम्लपित्तभवाछर्दि की चिकित्सा | ६७ |
| दुर्जयछर्दिजयीजल | ६७ |
| तृषा की चिकित्सा | ६७ |

| विषय | पृष्ठ |
|---|---|
| तृष्णाप्रशमन-चूर्ण | ६७ |
| दाड़िमादि चूर्ण व लेह | ६७ |
| उद्धततृषा की चिकित्सा | ६८ |
| हिक्काहर सुवर्ण गैरिक | ६८ |
| हिक्काहर शुंठीचूर्ण | ६८ |
| पिप्पलीक्वाथ | ६८ |
| पंच विध कास-श्वास की चिकित्सा | ६८ |
| व्याघ्रीलेह | ६८ |
| कासहर तुगाक्षीरी | ६८ |
| सुलभ योग | ६८ |
| कृमिहर विड़ंगलेह | ६८ |
| मुस्तादिलेह | ६८ |
| यवचूर्ण | ६९ |
| पाण्डुरोग-चिकित्सा | ६९ |
| क्षय-चिकित्सा | ६९ |
| शिलाजत्वावलेह | ६९ |
| कायपुष्टिकर योग | ६९ |
| सृतजल | ६९ |
| स्वरभेद-चिकित्सा | ६९ |
| औषधसाधितजल | ६९ |
| अरोचक-चिकित्सा | ६९ |
| दाड़िमाष्टक चूर्ण | ६९ |
| मूर्च्छा-चिकित्सा | ७० |
| द्राक्षादि लेह | ७० |
| सभी प्रकार की मूर्च्छाओं में प्रशस्त योग | ७० |
| दाह-चिकित्सा, प्रकार | ७० |
| दाहहर-लेप | ७० |
| अपस्मार-अपतंत्र की चिकित्सा | ७० |
| सर्वोन्मादग्रहापह-धूम | ७० |
| एक अपस्मारहर-योग | ७० |
| चातुर्थिक ज्वर, उन्माद एवं अपस्मार-नाशी योग | ७० |
| वातशमन के लिये ६ प्रकार के स्वेद | ७० |
| रक्तपित्त-चिकित्सा | ७१ |
| रक्तपित्त हर घृत | ७१ |
| ,, हारी नस्य | ७१ |
| गुदावर्त्त की चिकित्सा | ७१ |
| वात गुल्महर हिंग्वाष्टक चूर्ण | ७१ |
| हृद्रोग शामक-योग | ७१ |
| मूत्रकृच्छ्र-चिकित्सा | ७१ |
| त्रण पंच मूल क्वाथ | ७१ |
| कफोद्भवी मूत्रकृच्छ्र की चिकित्सा | ७१ |
| मूत्रकृच्छ्र पर प्रयोग | ७२ |
| मूत्रघात-चिकित्सा | ७२ |
| कर्पूरवर्त्ति | ७२ |
| मूत्रघातनाशी स्वेद व उपनाह | ७२ |
| अंत्रकरण्ड।नाशक-प्रयोग | ७२ |
| गण्डमालाशामक-योग | ७२ |
| दबी हुई मसूरिका को पुनः बाहर लाने वाला प्रयोग | ७२ |
| ऐसा ही दूसरा प्रयोग | ७२ |
| मसूरिका शामक योग व प्रयोग | ७२ |
| शीतलास्तोत्र (स्कन्दपुराणोक्त) | ७३ |
| शीतलादोषनिवारण | ७४ |
| ,, नाशी सितकषाय | ७४ |
| स्फोट व दाह का शमन | ७४ |
| **१४. नानाप्रयोगकथन— चतुर्दश पटल** | **७४-७७** |
| नेत्रचिकित्सा—प्रलेप | ७४ |
| ,, —आश्च्योतन | ७४ |
| ,, —अभिष्यंदनाशक-लेप | ७४ |
| ,, —विविध प्रयोग | ७४ |
| नासारोगचिकित्सा—हिंगुतैल | ७५ |
| कर्णशूलोपशान्तये—कर्णपूरण | ७५ |
| ,, अर्कपत्र-स्वरस-प्रयोग | ७५ |
| पूतिकर्णिका की चिकित्सा | ७५ |
| शिरोरोग में एक प्रयोग | ७५ |

| विषय | पृष्ठ | विषय | पृष्ठ |
|---|---|---|---|
| मुखपाक-चिकित्सा (दंतगतकृमि) | ७५ | श्वानविष-चिकित्सा | ७६ |
| ,, नाशक विविध प्रयोग | ७६ | केशकृष्णकारी-प्रयोग | ७६ |
| विषचिकित्सा में—एक प्रयोग | ७६ | पौष्टिकयोग | ७६ |
| ,, दूसरा प्रयोग | ७६ | ग्रंथ की समीक्षा | ७६ |
| कीटविषहारीधूप | ७६ | ग्रन्थकार के वंश का परिचय | ७६-७७ |
| वृश्चिकविष-चिकित्सा | ७६ | ग्रंथ-रचनाकाल | ७७ |
| ,, ,, हारी प्रलेप | ७६ | नास्तिचिकित्सितम् | ७७ |

# प्रस्तावना

आयुर्वेद एक प्राचीन भारतीय शास्त्र है । चरकसंहिता (सूत्रस्थान १/११-१४) के अनुसार धमार्थकाममोक्ष के साधन में शारीरिक शक्तियों के दौर्बल्य से बाधा हुई तो कल्याणकारी ५२ ऋषियों की मण्डली हिमालय-धाम में एकत्र हुई । सभी ऋषियों ने चिन्तन से जाना कि देवराज इन्द्र ही मृत्युलोक के रोग-शमन का उपाय बता सकते हैं । तदनुसार ऋषि भारद्वाज इन्द्र के पास पहुँचे और उन्होंने उनसे आयुर्वेद-ज्ञान प्राप्त किया । ब्रह्मा ने ऋषियों की सुविधा हेतु आयुर्वेद-आगम को निम्न आठ भागों अर्थात् तंत्रों में विभक्त किया (सुश्रुत संहिता, सूत्रस्थान १/६) (१) शल्य (२) शालाक्य (३) कायचिकित्सा (४) भूतविद्या (५) कौमारभृत्य (६) अगदतंत्र (७) रसायन और (८) वाजीकरण । कल्याणमिश्र प्रणीत 'बालतंत्र' नामक आयुर्वेदिक रचना वस्तुत: कौमारभृत्य विषयक रचना है ।

कौमारभृत्य - चिकित्सा के प्रथम आचार्य जीवक माने जाते हैं, जिन्होंने इस तंत्र का ज्ञान प्रजापति कश्यप से प्राप्त किया । तदुपरान्त पार्वतक, बधक और रावण के नाम उल्लेखनीय हैं । रावण की रचनाओं में कुमारतंत्र, बालचिकित्सा, नाड़ी-परीक्षा, अर्कप्रकाश और उड्डीशतंत्र आदि उल्लेखनीय हैं । श्री गिरीन्द्रनाथ ने 'कुमारतंत्र' का कर्त्ता लंकाधिपति रावण को ही माना है (हिस्ट्रीऑफ इण्डियन मेडासिन, भाग २ पृ० ४२)

कौमारभृत्य विषयपरक अर्थात् बालतंत्र विषयक अनेक आयुर्वेदीय अप्रकाशित रचनाए विभिन्न ग्रन्थ-भण्डारों में उपलब्ध हैं जिनकी जानकारी चिकित्साक्षेत्र में आवश्यक है । राजस्थान - प्राच्यविद्या - प्रतिष्ठान के जोधपुर मुख्यालय और शाखाओं में भी एतद्‌विषयक अनेक अप्रकाशित रचनाएं विभिन्न हस्तलिखित ग्रन्थों में प्राप्त होती हैं । यद्यपि ऐसी अनेक रचनाओं का विवरण प्रतिष्ठान की हस्तलिखित ग्रन्थ-सूचियों में भी प्रकाशित किया गया है । तथापि वैद्य-समाज का ध्यान अभी तक इस दिशा में अपेक्षित रूप में आकर्षित नहीं हुआ है ।

कल्याण मिश्र प्रणीत 'बालतंत्र' बाल-चिकित्सा सम्बन्धी एक महत्व-पूर्ण रचना है जिसकी प्रतिष्ठान के संग्रह में अनेक प्रतियां हैं । यह रचना

१४ भागों में विभक्त है जिनका विवरण इस प्रकार है—

(१) षोडशवन्ध्याप्रतीकार
(२) साधारणवन्ध्यौषध-कथन
(३) पुरुषवीर्यवृद्धि-कथन
(४) गर्भाधानकाल-रुद्रस्नान-कथन
(५) गर्भिणीगर्भरक्षा-कथन
(६) सुखप्रसवोपाय-कथन
(७) दिनगृहीतबालग्रहहर
(८) मासगृहीतबालग्रहहर
(९) वर्षगृहीतबालग्रहहर
(१०) षोडशदिनमासवर्षगृहीतबालग्रह-हर
(११) सामान्यतो बालग्रहाविष्टे चेष्टोद्वर्तन-स्नान-धूपादिविधान
(१२) ज्वरहरणोपाय-कथन
(१३) शीतला-चिकित्सा-कथन
(१४) नानाप्रयोग-कथन

'बालतन्त्र' के विद्वान् सम्पादक कविराज पं० विष्णुदत्तजी ने अपनी भूमिका में 'मन्त्रमहोदधि' के सम्पादक श्री जीवानन्द विद्यासागर भट्टाचार्य, बी.ए. (द्वितीय संस्करण, सिद्धेश्वरयन्त्र, कलकत्ता सन् १८९२ ई.) के पञ्चविंशस्तरंग के श्लोक सं० १२१ से १२५ उद्धृत करते हुए तदनुसार लिखा है—

"अहिच्छत्रं द्विजच्छत्रं वत्सगोत्र समुद्भवः ।।
आसीद्रत्नाकरो नाम विद्वान् ख्यातो धरातले ।।१२१।।

तत्तनूजो रामभक्तः फन्न भट्टाभिधोऽभवत् ।।
महीधरस्तदुत्पन्नः संसारासारतां विदन् ।।१२२।।

निजदेशं परित्यज्य गतो वाराणसीं पुरीम् ।।
सेवमानो नरहरिस्तत्र ग्रंथमिम व्यधात् ।।१२३।।

कल्याणभिधपुत्रेण तथान्यैर्द्विजसत्तमैः ।।
अनेकानागम-ग्रन्थान् विलोकित मुनीश्वरैः ।।१२४।।

एक ग्रन्थस्थितं सर्वं मन्त्राणां सारमीप्सुभिः ।।
सम्प्रार्थितः स्वमत्याऽसौ नाम्ना मन्त्रमहोदधिः ।।१२५।।

इस प्रकार हमारे श्री कल्याण मिश्र अहिच्छत्र द्विजच्छत्र के वत्सगोत्री श्री रत्नाकर के पुत्र रामभक्त फन्नभट्ट के पुत्र श्री महीधर [ के पुत्र रूप में ] उत्पन्न हुए । वे अपने पिता के साथ अपने देश को छोड़कर वाराणसीपुरी पधारे । वहां आचार्य श्री नरहरि की सेवा में रहते हुए कल्याण नामक अपने पुत्र तथा द्विजसत्तमों के साथ अनेकानेक आगम-ग्रन्थों के निष्णात मुनीश्वरों के वचनों को सारतत्त्वबोधी विद्वानों की इच्छा पूरी करने हेतु एक ही ग्रन्थ 'मन्त्रमहोदधि' की रचना की । अतः हमारे ग्रन्थकार श्री कल्याण मिश्र भी 'ऋषयो मंत्रद्रष्टारः' की ही परम्परा के एक त्रिकालज्ञ ऋषि थे । इसमें हमें कोई संशय नहीं ।''

वास्तव में 'मंत्रमहोदधि' के अनुसार कल्याण मिश्र के पूर्वजों की परम्परा निम्नप्रकारेण निर्धारित होती है—

रत्नाकर (अहिच्छत्र-द्विजच्छत्रान्वयजात)
|
फन्नभट्ट
|
महीधर (काशीवास किया, मंत्रमहोदधि के प्रणेता)
|
कल्याण मिश्र

बालतन्त्रकार ने ग्यारहवें पटल के अन्त में पुष्पिकान्तर्गत अपना वंश-परिचय इस प्रकार दिया है—

''अहिच्छत्रान्वये जातः पण्डितैकशिरोमणि : ।
रामचन्द्रार्चनरतो रामदासः सतां प्रियः ।।२।।

विद्वज्जनाल्हादकरो मनस्वी महीधरः सर्वजनाभिवंद्यः ।
लक्ष्मीनृसिंहांघ्रिसरोजभृङ्गस्तदात्मजोऽभूद्विदितागमार्थः ।।३।।

कल्याण इत्युद्गतनामधेयस्तदात्मजो ग्रन्थवरान्विलोक्य
परोपकाराय बबंध तन्त्रं सतां समालोकनयोग्यमेतत् ।।४।।

युगवेदरसाकालमिते वर्षे नभे रवौ ।
पूर्णिमायां चकारेदं लिलेख च शिवालये ।।५।।''

अर्थात् अहिच्छत्रवंश में पण्डित शिरोमणि एक मात्र रामचन्द्रजी की अर्चना में निरत, सज्जनों के प्रिय पण्डित रामदास हुये। विद्वज्जनों को आनन्द देने वाले मनस्वी सर्वजनों के द्वारा अभिवन्द्य श्री लक्ष्मीनृसिंह के चरण-सरोज के भृङ्गवत् उपासक आगमार्थों को जानने वाले उनके आत्मज (रामदास के) श्री महीधर हुए। उनके पुत्र कल्याण नामक विद्वान् ने श्रेष्ठ ग्रन्थों का अवलोकन कर, परोपकार के लिए इस तंत्र का निबंधन किया जो अवलोकन योग्य है। संवत् १६४४ वर्ष के श्रावण मास की पूर्णिमा रविवार को इस ग्रन्थ का निर्माण हुआ और यह शिवमन्दिर में लिखा गया।

बालतंत्रकार के अनुसार उसका वंश-सम्बन्धी विवरण इस प्रकार है—

रामदास (अहिच्छत्रान्वये जातः)
|
महीधर
|
कल्याण (बालतंत्रकर्त्ता)

इस प्रकार बालतंत्रकार के वंश का मंत्रमहोदधिकार के वंश से रामदास और फन्नभट्ट के सम्बन्ध में अन्तर ज्ञात होता है। दोनों ग्रन्थों के कर्त्ता दोनों कल्याण भिन्न २ वंश के हैं अथवा एक ही वंश के, यह स्पष्ट निर्णय नहीं होता है। बालतंत्रकार के पितामह रामदास और मंत्रमहोदधिकार के पिता फन्नभट्ट दोनों ही राम-भक्त अवश्य थे। वास्तव में महीधर और उनके पुत्र कल्याण दोनों ही नामों की दोनों ग्रन्थों में समानता है। इस मत की पुष्टि राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान जोधपुर में संगृहीत क्रमांक २२५ पर अंकित कल्याण मिश्र कृत बालतंत्र की भाषा वचनिका नामक प्रति से भी होती है। जिसकी पुष्पिका में महीधर के पिता पं० रामचन्द्र और महीधर के पुत्र रूप में उक्त ग्रथ के कर्त्ता पंडित कल्याण मिश्र को कल्याणदास कहा गया है जो रामदास के समीप है। अतः ग्रथकार के पिता का नाम रामदास मूल के अनुसार शुद्ध है। वचनिका का अपेक्षित अंश इस प्रकार है—

"अब शास्त्र का करणहारा की प्रसन्नै कहै ग्रंथ करता कहै है। मैंने जो यह बालकचिकित्सा ग्रंथ कह्यौ है नाना प्रकार का ग्रथां कौ देषिकरि यौह ग्रंथ कह्यौ है। सो ग्रथ कोण कौण से है। आत्रय १, चरक २, सुश्रुत ३,

वाग्भट ४, हारीत ५, जोगसत ६, संनिपात कलिका ७, बंगसेन ८, भावप्रकास ९, भेड १०, टोडरानद ११, जोगरतनावली १२, वैद्यविद्याविनोद १३, वैद्यकसारोद्धार १४, इत्यादिक ग्रंथ की साषि ले करिगै यहै संसक्त सलोक वंध किया है । कल्याण पंडित कहता है । यहै बालक की चिकित्सा उपाई कौ काल, देस, वल देषि करि किकित्सा कीजै ।

अहिछता नगर कै विषै पंडिता कै विषै सिरोमणि रांमचंद्र नामा पंडित रांमचंद्रजी की पूजा सेवा विषै सावधांन । सो रांमचंद्र पंडित कैसौ है । सतां कहतां सज्जनां मै पंडित मनुष्यां मै प्रिय छै । तिसकै महीधर नामा पंडित पुत्र भयौ । सौ कैसौ हूवौ । पंडित मनुष्यां कै तांई पुस्याली कै कर्णवाले होत भये । अत्यंत महा पंडित होत भये । सर्व पंडित जनां कौ चंदनीक भये । फेर महीधर पंडित कैसे होत भये । श्री लषमीजी के नृसिंहजी के चरण-कमल के सेवन विषै भृंग कहतां भंवरा समांन होत भये । महावेदांती भये । आतमग्यांनी भये । सर्वशास्त्र आगम अर्थ तिसके जाणणहार भये । महापरमागम शास्त्र के वकता भये । तिसकै पुत्र कल्याणदास नामां होत भये । महा पंडित सर्वसास्त्र के वकता जाणणहार वैद्यक चिकित्सा विषै महाप्रवीण सर्वशास्त्र वैद्यक का देषि करि परोपगार कै निमित पंडितां का ग्यांन कै वास्तै यह 'बालक चिकित्सा' ग्रंथ करण वाले कल्याणदास नामां पंडित होत भये । तिसनैं करी स्लोक का बंध करी । तिसकी भाषा खरतर गछमां मांहि जती वाचक पदवी-धारक दीपचंद्र इसै नामै तिसनै कह्यौ । इह संस्कृत ग्रंथ कठिन(त)म है । सौ अग्यानी मंदबुद्धि पुरुष ईस मांही समझै नहीं । तिस खातरि 'बालतंत्र ग्रंथ भाषा वचनिका' यां त्यां करी । अग्यांनी मंदबुद्धि कै वास्तै । और या ग्रंथ विषै षोड़श प्रकार की वंध्या स्त्री कथन । पुरुष नामरद की चिकित्सा उपाय कथन । बालक की चिकित्सा कथन । बालक का मास दिन वरसां की चिकित्सा । वलि-विधान कथन । धाई का लक्षण कथन । दूध भारी हलका उपाई कथन । दूध सुध करण थण कै विषै दूध प्रचुर करण का उपाय और सर्व बालक का रोगां की कथन । ईसो जो बालकतंत्र ग्रंथ सर्वजन कै सुखकारी हौवौ ।। इति श्री बालतंत्र ग्रंथ भाषा वचनिकायां बालक का सर्व उपाय कथन चौदमौ पटल पूरौ हूवौ १४ इति श्री बालतंत्र ग्रंथ संपूर्णः समाप्ता संवत १८९५ शुभं भवतु कल्याणकारी ।।"

बालतंत्र की भाषा वचनिका की एक अन्य प्रति जोधपुर-संग्रह में

ग्रन्थाङ्क ३९८७० पर भी है जो उक्त प्रति से भिन्न है। यह पद्यबद्ध है, किन्तु यह वंध्या-दोष-निवारण, गर्भधारणोपाय और दुग्ध शुद्धीकरणादि त्रिपटलात्मक है। इसमें १५ पत्र हैं और सं० १९१० में यह लिखी गई है। इससे यह ज्ञात होता है कि इस ग्रंथ का वैद्यों में तथा जनसाधारण में प्रचुर प्रचार रहा है।

उक्त वचनिका में वर्णित अहिछता नगर अथवा मूल बालतन्त्र का "अहिच्छत्र द्विजच्छत्र" और आयुर्वेद का बृहत् इतिहास" (अत्रिदेव विद्यालङ्कार कृत हिन्दी समिति, लखनऊ) के मानचित्र में अंकित गुजरात का "ब्राह्मणाबाद" एक ही प्रतीत होता है। इसी इतिहास में कल्याण मिश्र कृत बालतंत्र की सूचना इस प्रकार है—

"शिशुरोग पर कल्याण का बालतंत्र नामक एक ग्रन्थ है। यह काशी में १५८८ ईसवी (१६४४ विक्रमी) में बना है। इसके कर्त्ता वैद्य कल्याण का मूल स्थान गुजरात था। ये प्रश्नोरा ब्राह्मण थे।" पृ० ३०७.

बालतंत्र में स्वास्थ्य सम्बन्धी अनेक उपयोगी औषध-प्रयोगादि दिये गये हैं। उदाहरण के लिए बालतंत्रकार ने निरोध-उपाय भी बतलाया है जिससे ज्ञात होता है कि परिवार-नियोजन सम्बन्धी विचारधारा एक मात्र पश्चिम की देन न होकर, भारतवर्ष में बहुत पहले से प्रचलित थी—

"आरनाल परिपोषितं त्र्यहं बाणपुष्पसहितं तु कामिनी।
सत्पुराणगुणमुष्ट (ष्टि) सेविनी नैव गर्भ धरते कदाचन" ॥२५०॥३२॥

अर्थात् बाणपुष्प सहित आरनाल से तीन दिन पोषित पुराने गुड को ४ तोला सेवन करने वाली नारी कभी भी गर्भ धारण नहीं करती है।

आरनाल व बाणपुष्प के सम्बन्ध में मान्यवर भिषक्केसरी आचार्य पं० बुद्धिप्रकाश जी आयुर्वेद वाचस्पति, आचार्य आयुर्वेदाश्रम, मकराणा मुहल्ला जोधपुर ने हमारे निवेदन पर निम्नलिखित टिप्पणी दी है—तदर्थ वे प्रचुर प्रशंसास्पद हैं।

"**आरनाल** :—पूर्वाचार्यों ने आरनाल (काञ्जी) के अनेक प्रकारों का वर्णन किया है। यथा —

(१) सर्जी क्षितिखगटङ्कणलवणान्वितसर्कभाजने त्रिदिनम्।
पर्युषितमारनालं गगनादिकजारणे शस्तम् ॥ (र.हृ.त.)

भावार्थ :—इस आर्या में गगनादि ग्रास के जारणार्थ उपयोगी कांजी का वर्णन है । चावलों को उबालकर तैयार किये मांड में साजी, फिटकरी, कसीस, सोहागा, व सैन्धव (स्वेदन संस्कार में कथित कांजी के मसालों युक्त) मिलाकर तीन दिन (अम्ल होने तक) रख कर यह आरनाल की जाय । इससे गर्भप्रवृत्ति शीघ्र होती है ।

(२) "अत्यम्लमारनालं च तद्भावे प्रयोजयेत्" (रस. रा. सु.)

भावार्थ :—धान्याम्ल के अभाव में पारद के स्वेदनादि संस्कारों से अत्यन्त खट्टी कांजी लेनी चाहिए ।

(३) "आरनालं तु गोधूमैरामैः स्यान्निस्तुषीकृतैः ।
पक्वैर्वा संधितैस्तत्तु सौवीरसदृशं गुणैः ।। (भा. प्र.)

भावार्थ :—तुषरहित कच्चे अथवा पक्के गेंहू को भिगोकर आरनाल नामक कांजी बनाई जाती है जिसके सौवीर सदृश गुण होते हैं । सौवीर बनाने का विधान भी इसी प्रकार का है :—

"सौवीरन्तु यवैरामैः पक्वैर्वानिस्तुषैः कृतम् ।
गोधूमैरपि सौवीरमाचार्य्याः केचिदूचिरे ।। (भा. प्र.)

चरक ७/७०, ६/६ और सुश्रुत ४४/३५-४० में अनेक औषधियों के संयोग से विभिन्न सौवीरों के बनाने का वर्णन मिलता है ।

बाणपुष्पः—

नील पुष्पवाली कटसरैया (पियाँवासा) को बाणपुष्प कहते हैं । इसकी गणना आचार्यों ने पुष्पवर्ग में की है ।

"रक्तपुष्पः कुरवकः पीतपुष्पः कुरण्टकः ।
नीलपुष्पश्चार्त्तगलः सैरेयः श्वेतपुष्पकः ।। (नि. र.)

भावार्थ :—लालपुष्प की कटसरैया को 'कुरबक' पीतपुष्प वाली को 'कुरण्टक" नीलपुष्पवाली को "आर्त्तगल" और श्वेतपुष्पवाली को "सैरेयक" कहते हैं ।

**आर्त्तगल के पर्याय :—**

"नीलपुष्पी नीलझिण्टी बाणाश्चार्तगलस्तथा" ।

मध्यकालीन प्रसिद्ध ग्रन्थ भावप्रकाश में यही योग निम्नरूपेण मिलता है ।

"आरनाल परिपेषितं त्र्यहं या जपा कुसुममति पुष्पिणी ।
सत्पुराण गुडमुष्टि सेविनी सन्दधाति नहि गर्भमङ्गना ।।" ८/३४।।

बालतन्त्रकार ने कतिपय औषध-प्रयोग प्राचीनग्रन्थों के आधार पर दिये हैं—

प्रयोगसारप्रमुखागमेषु प्रोक्तेषु शास्त्रेषु च सुश्रुताद्यैः ।
यदुक्तमेकत्र वितन्वतेऽस्मिन् ग्रन्थो मया तत्खलु बालतन्त्रम् ।।
।।१ प० ।।२।।

ग्रन्थान् विलोक्य प्रचुरप्रयोगान् पद्यैः स्वकीयै कतिचित्तदीयैः ।
प्रोक्ता चिकित्सा रुचिरा शिशूनां तां देशकालादि समीक्ष्य कुर्यात् ।।
।।१३ प० ।।

प्रथम पटल में आदिवन्ध्या, काकवन्ध्या, मृतवत्सा, गर्भस्रावी, आदि षोडशवन्ध्या स्त्रियों का स्वरूप एवं चिकित्सा वर्णित है । यथा —

व्यक्तिनीनामवन्ध्यायाः प्रमेहो भवति स्फुटम् ।
रक्तापामार्गजं बीजं शर्करामर्दकीफलम् ।। १ प० ।।४५।।

साधारणवन्ध्या स्त्रियों के गर्भधारणोपाय तथा गर्भनिरोधादि प्रयोग भी प्रकरणतः वर्णित हैं । यथा —

"पत्रमेकं पलाशस्य गर्भिणी पयसान्वितम् ।
पीत्वा पुत्रमवाप्नोति वीर्यवन्तं न संशयः ।। २ प० १६।।

गर्भिणी स्त्री पलाश के एक पत्ते को (नियमित रूप से) दूध के साथ सेवन करे तो वीर्यवान् पुत्र को प्राप्त करती है । इसमें संशय नहीं है ।

भैषज्यरत्नावली में निम्न पाठान्तर मिलता है ।

पत्रमेकं पलाशस्य गर्भिणी पयसान्वितम् ।
पीत्वा च लभते पुत्रं रूपवन्तं न संशयः ॥व. चि. ।८॥

व्यक्तिनी नाम की वन्ध्या स्त्री को प्रमेह अवश्य होता है । इस प्रकार की स्त्री को लाल अपामार्ग के बीज, शर्करा, मदंकी का फल तथा 'रतनजोत' को गोदुग्ध के साथ पीसकर २१ दिन तक पान कराने से प्रमेह का अवश्य नाश होता है ।

इसी प्रकार साधारणवन्ध्या स्त्रियों का गर्भधारणोपाय निम्नप्रकार से बतलाया गया है । यथा—

शुंठी गुडेन संपिष्ट्वा भक्षयेद्दिनसप्तकम् ।
तेन गर्भो भवेन्नार्याः सत्यं सत्यं मयोदितम् ॥२प०।३५॥

सोठ को पीसकर गुड के साथ मिलाकर सात दिन तक सेवन करने से वन्ध्या-स्त्री को भी गर्भ रह जाता है । मेरा कहा हुआ यह सत्य है ऐसा ग्रन्थकार कल्याण कहते हैं ।

जो पुरुष धातु-नष्ट हो जाने से शुक्रहीन हो गया है उसकी धातुवृद्धि या नपुंसकत्व निवारण के अनेक उपाय तृतीय पटल में निगदित हैं । यथा—

वृद्धशाल्मलिमूलस्य रसं शर्करयापिबेत् ।
एतत्प्रयोगात्सप्ताहाज्जायते रेतसोऽम्बुधिः ॥३प०।४९॥

भैषज्यरत्नावली में निम्न पाठान्तर मिलता है :—

"वृद्धशाल्मलिमूलस्य रसं शर्करया समम् ।
प्रयोगादस्य सप्ताहाज्जायते रेतसोऽम्बुधिः ॥

पुराने शाल्मलि वृक्षों की जड़ों का रस सप्ताहपर्यन्त शक्कर के साथ पान करने से बहुत अधिक धातुवृद्धि हो जाती हैं ।

वृद्ध पुरुष भी निम्नप्रकार से ६ मास तक अपूपादि के सेवन करने से युवा हो जाता है तथा एक मास सेवन करने से शुक्रवृद्धि हो जाती है । यथाः—

माषा यवाश्वदंष्ट्रा वा वानरी शतमूलिका ॥३प०।५॥

पयसा पेषयेत्तेन पक्वयेत् घृतपूपकम् ।
दिनान्ते भक्षयेदेकं ततो क्षीरं पिबेन्नरः ।।६।।

षण्मासाभ्यन्तरे चैव वृद्धोऽपि तरुणायते ।
मासमेकप्रयोगेण शुक्रवृद्धिर्भवेद्ध्रुवम् ।।३प०।७।।

माष, यव, गोखरू, वानरी (कौंच), शतमूलिका (शतावर) आदि को दूध के साथ पीसकर घी में तलकर एक अपूप सायं नियमित रूप से खायें और तदनन्तर दूध पीवे । इस प्रकार ६ मास नियमित प्रयोग से वृद्ध आदमी तरुण के समान हो जाता है । यदि एक माह तक ही इस प्रयोग को चालू रखे तो शुक्र में वृद्धि निश्चित हो जाती है ।

चतुर्थ पटल में गर्भाधान एवं कालरुद्रस्नान आदि का विस्तार से वर्णन किया गया है ।

सद्गुणों से समन्वित सन्तति समुत्पन्न करने के लिए पति-पत्नि के विचार पवित्र होने चाहिये । इस विषय में कामसूत्रकार वात्स्यायन ने भी जोर दिया है । ग्रन्थकार ने सुश्रुत के शरीर संस्थान अध्याय २२ से ४६ को इस प्रकरण में निम्नरूपेण दोहरा दिया है ।

"आहाराचारचेष्टाभिर्यादृशीभिः समन्वितौ ।
स्त्रीपुंसौ समुपेयातां ततः (योः) पुत्रोऽपि तादृशः ।।४प०।।४।।

पञ्चम पटल में गर्भस्थित बालक की रक्षा के लिए बलि का विधान भी आवश्यक बतलाया गया है । यथा —

गर्भिणीगर्भरक्षार्थं मासे तु प्रथमे बलिः ।
प्रजापतिं समुद्दिश्य देयो मन्त्रेण मन्त्रिणा ।।५ प०।।२।।

इस श्लोक के पूर्वार्द्ध में प्रतिलिपिकर्ता के प्रमादवश मन्त्र अपूर्ण रह गया है व श्लोक के उत्तरार्द्ध में औषध-सेवन विधि आ गई है । मंत्र का शुद्ध पाठ इस प्रकार है—

एह्येहि भगवन् ब्रह्मन् प्रजापतेः प्रजापते ।
बालस्य गर्भरक्षार्थं रक्ष रक्ष कुमारकम् ।।वन्ध्या जीवने।५।२१।।

गर्भरक्षा के लिए औषधिका सेवन करना भी आवश्यक माना गया है। यथा —

यदि चेत्प्रथमे मासि गर्भे भवति वेदना ।
नीलोत्पलं सनालं च शृंगाटककसेरुकम् ॥५ प०।६॥

भैषज्यरत्नावली में इस प्रकार पाठान्तर मिलता है—

"प्रथमे मासि गर्भे तु यदा भवति वेदना ।
चन्दनं शतपुष्पा च शर्करा मदयन्तिका ॥
एतानि समभागानि पिष्ट्वा तण्डुलवारिणा
पाययेत् पयसाऽऽलोंङ्ग गर्भिणी मात्रया भिषक् ॥गर्भिणी रोग-चिकित्सा १-४॥

यदि गर्भिणी स्त्री को प्रथम मास में गर्भ में वेदना हो तो सनाल नीलकमल कसेरुक, शृंगाटक (सिंगाड़ा) को शीतल जल से पीसकर दूध के साथ पान कराने से गर्भ पतित नहीं होता है और शूल भी नष्ट हो जाता है ।

अपस्मार (मृगी का) उपचार

कूष्माण्डकरसं दत्वा मधुकं परिपेषयेत् ।
अपस्मारविनाशाय तत्पिवेत्सप्तवासरम् ॥१३प०॥६७॥

महुआ को कूष्माण्डरस में पीसकर मृगीरोग निवारणार्थ एक सप्ताह तक पीना चाहिए ।

शीतलादोष निवारणार्थ —

शीतलेन जलेनैव चचर्या (चंचर्या) च समन्वितम् ।
हरिद्रां यः पिवेत्तस्य न दोषः शीतला भवेत् ॥१३ प०॥१०४॥

चंचरी से मिश्रित हल्दी को शीतल जल के साथ जो पीता है उसे शीतला-दोष नहीं होता है। भावप्रकाश में पाठान्तर इस प्रकार है —

ये शीतलेन सलिलेन विपिष्य सम्यङ् निम्बाक्षबीजसहितां रजनीं पिबन्ति ।
तेषां भवन्ति न कदाचिदपीह देहे पीडाकरा जगति शीतलिका विधारा ॥

इस ग्रन्थ में इसी पटल के श्लोक १०६ का पाठ इस प्रकार है—

चन्दनं वासको मुस्तं गुडूची द्राक्षयासह,
एषां सितकषायस्तु शीतलाज्वरनाशनम् ।।

किन्तु, भावप्रकाश में यही पाठ इस प्रकार है—

"चन्दकं वासको मुस्तं गुडूची द्राक्षयासह ।
एषां शीतकषायस्तु शीतलोज्वर नाशनः ।।"

हल्दी के साथ इस योग में चर्चरी के स्थान पर नीम व बेहड़ो के बीजों का उल्लेख है ।

नाना प्रयोग नामक इस पटल में नेत्र-नासिका-शिर आदि रोगों के निवारणोपाय के अनन्तर सर्पादि के काटने से जनित विष के प्रशमन के उपाय बतलाये गये हैं ।

**नेत्ररोगोपचार :—**

धत्तूरफलकर्पूरे निघृष्यमधुनाऽजयेत् ।
नेत्ररोगाः प्रणश्यन्ति सिंहत्रस्ता मृगा इव ।।१४। ।।६।।

**कान के दर्द का उपचार :—**

अर्कस्यं पत्रं परिणामपीतं तैलेनलिप्तं शिखिनावतप्तम् ।
आपीड्यतोयं श्रवणे निषिक्तं निहन्ति शूलं बहुवेदनां च ।।१४।प०।।६।।

**पाठान्तरेण :—**

अर्कस्य पत्रं परिणामपीतमाज्येन लिप्तं शिखिनाऽवतप्तम् ।
आपीड्यतोयं श्रवणे निषक्तं निहन्ति शूलं बहुवेदनां च ।।भै.।कर्म।।१०।।

परिपक्व पीत अर्क (आकड़ा) के पत्ते को तेल लगाकर आग में सेक कर तथा उस पत्ते को दबा कर उसका रस कान में डालने से कान की बहुवेदना नष्ट हो जाती है ।

**कीटभक्षितदन्तोपचार :—**

मन्दोष्णं धारयेच्छुद्धं हिंगु दन्तान्तरे स्थितम् ।
तेन प्रणाशयत्याशु क्रमि-दंशो महागदः ।।१४ प०।१२।।

शुद्ध हींग को थोड़ा उष्ण कर दंशित स्थान में डालने से कृमिदंश जल्दी ही नष्ट हो जाता है।

इस प्रकार ग्रन्थकार ने 'बालतंत्र' नामक आकार में, लघीयसी किन्तु, उपयोगी दृष्टि से इस महीयसी रचना में विविध प्रयोगों द्वारा "कौमारभृत्य" विषय का सम्यक् सम्पादन प्रतिपादन किया है। इस एक ही ग्रन्थ से एतद्-विषयक अनेक उपयोगी विषयों की जानकारी मिल जाती है। अतः यह आयुर्वेद-प्रियजनों के लिए उपकारक है।

"बालतन्त्र" का प्रतिष्ठान हेतु सम्पादन कर कविराज पं० विष्णुदत्तजी पुरोहित ने एक उपयोगी और महत्वपूर्ण कार्य किया है। तदर्थ समस्त आयुर्वेद-जगत् और प्रतिष्ठान इनके प्रति आभारी है।

हस्तलिखित ग्रन्थ-संग्रहानुभाग, प्राच्यविद्या-प्रतिष्ठान के प्रभारी श्री रमानन्द सारस्वत और गवेषकद्वय श्री ठाकुरदत्त जोशी तथा श्री ओम-प्रकाश शर्मा एवं प्रतिलिपि-कर्त्ता श्री गिरिवरवल्लभ दाधीच ने इस महत्वपूर्ण कार्य में यथेष्ट सहयोग दिया है, अतएव इन्हें अनेक धन्यवाद।

डॉ० पुरुषोत्तमलाल मेनारिया

राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर
५ जनवरी, १९७३ ई०

# सम्पादकीय भूमिका

श्रीकल्याणमिश्रकृत बालतंत्र, एक आयुर्विज्ञानानुमोदित तांत्रिक ग्रंथ है। सत्रहवीं शताब्दी में यह लिखा गया था। भारत का वह समय परतन्त्रता का था; तत्कालीन प्रशासक भारत एवं भारतीय संस्कृति के घोर विरोधी थे। संस्कृति-मूलक साहित्य को नष्ट करना उनकी दिनचर्या बन गई थी: अपने इसी उन्माद में उन्होंने छल से, बल से और कौशल से जितना भी बन सका, भारतीय साहित्य को ढूंढ-ढूंढ कर हमामों का ईंधन बनाया।

ऐसे ही समय में—लुकाछिपी के जमाने में—भारतीयों ने अपने प्राणों से भी अधिक अपने साहित्य की रक्षा की। साहित्य की सुरक्षा उत्तराधिकारियों पर छोड़, वे महाप्रस्थान के रास्ते के पथिक बने। ऐसी परिस्थिति भारत में ग्यारहवीं सदी से प्रारम्भ हो चली थी। इन परिस्थितियों का पूर्व ज्ञान भारतीयों को बहुत पहले ही हो गया था। यही कारण था कि हमारी संस्कृति में मंत्र, तंत्र और यंत्रों का समावेश किया गया। यों मंत्र तो भारत के आदि वा अनादिकाल से विद्यमान थे। पराधीनता-काल के परिचय का पूर्वाभास भारतीय नाथसंप्रदाय के आचार्यों एवं जैनागमी आचार्यों को संभव है, हो चला था। यही कारण था कि उन्होंने तंत्रों एवं यंत्रो का पुष्कल मात्रा में प्रचार किया। पर वे 'अधिकारी' का महत्त्व अपने मन-मस्तिष्क में 'सर्वोपरि' माना करते थे; अतः जब तक उन्हें कोई योग्य अधिकारी नहीं मिलता तब तक वे तंत्र और यंत्र की गोपनीय तत्त्वों में ही गणना करते थे और योग्य अधिकारी को भी वे गोपनीयता का परामर्श देते थे। यही कारण है कि सत्रहवीं शताब्दी का ग्रंथ अठारहवीं शताब्दी में लिपिकार के हाथ लगा। सारांशतः तंत्र और यंत्र का साहित्य सूत्रात्मक ही हुआ करता था अर्थात् थोड़े में जितना चाहें उतना या जितना आवश्यक हो उतना भर देना और ऊपर से याथातथ्य प्रतीति न हो पाये, यही अन्तर्गोप्य उद्देश्य रहता था। उसी शृंखला की एक कड़ी हमारा 'बालतंत्र' है।

आयुर्वेदीय वाङ्मय के अनुसार यदि देखा जाय तो 'बालतंत्र' एक प्रकार से आयुर्वेदीय 'कौमारभृत्य' ही है। प्रस्तुत 'बालतंत्र' कौमारभृत्य का ही एक मौलिक रूप है। कौमारभृत्य में 'ग्रह-गृहीत' बालकों को दुःसाध्य, कृच्छ्र-साध्य तथा असाध्य ही माना है। सम्भवतः इसी उलझन को सुलझाने हेतु श्रीकल्याण-

मिश्र ने इसे कुछ २ मौलिक रूप दिया हो ? ऐसा सम्भाव्य है । पूरे ग्रंथ को देखने के बाद पाठक पर इसकी मौलिकता की मुद्रा अंकित हो ही जाती है ।

सम्प्रति भारतीय वातावरण को 'परिवार-नियोजन' की करवट लेने की प्रेरणा पाश्चात्याभिभूत प्रशासन ने दी है । अतः पुरातन भारतीय साहित्य में 'परिवार-नियोजन' को ढूंढ़ने की प्रवृत्ति का उद्भव हुआ है । उसी प्रवृत्ति की शृंखला में हमें 'बालतंत्र' का अध्ययन करने पर यह स्वीकार करना होगा कि 'बालतंत्र' में संकटकालीन परिवार-नियोजन का आभास तत्कालीन सांस्कृतिक वातावरण के अनुरूप मिलता है । हमारा आज का निष्कर्ष परिवार में तीन बच्चों के अस्तित्व को स्वीकार करता है और 'बालतन्त्रकार' भी तीन बच्चों के अस्तित्व को ही गुम्फित करता है, मात्र वातावरण की भिन्नता अवश्य है । आज के वातावरण में कृत्रिमता का अभिन्न सहयोग है, जब कि बालतन्त्र-काल में संयमका एकान्त समर्थन था एवं उसी पृष्ठभूमि में 'परिवार-नियोजन' का अस्पष्ट गुंफन है ।

आज के वातावरण में जिसे हम 'परिवार-नियोजन' कहते हैं उसी को तत्कालीन समय में 'इच्छासंतति' की संज्ञा से अभिहित किया गया था । अवश्य हो 'कृत्रिमता' उस समय में अपने अस्तित्त्व में नहीं थी । किन्तु, आयुर्वेद में 'नियोजन' व 'योजन' स्वेच्छाधीन करने की योजनाओं का यत्रतत्र उल्लेख है । प्रस्तुत 'बालतंत्र' एक संग्रह ग्रंथ है जैसा कि ग्रंथकार ने मंगलाचरणोत्तर ही स्वीकार किया है—

"प्रयोगसारप्रमुखागमेषु प्रोक्तेषु शास्त्रेषु च सुश्रुताद्यैः ।
यदुक्तमेकत्र वितन्वतेऽस्मिन् ग्रन्थो मया तत्खलु बालतन्त्रम् ।।२ ।

आयुर्वेदमतानुसार नारी में आठ दोष माने हैं और एक दोष अर्थात् नौवां दोष पुरुष का माना है । इन दोषों की सफाई आयुर्वेद ने बतलाई है । उस शुद्धीकरण का अनुशीलन करने पर पता चल सकता है कि आयुर्वेद ने 'इच्छा-सन्तति' हो अपना उद्देश्य माना है । अर्थात् योनि का शुद्धीकरण एवं वीर्य का स्थिरीकरण ही तो 'इच्छा-सन्तति' का मूल कारण है । इसीका उल्लेख ग्रंथकार ने किया है । अवश्य ही ऊपरी आवरण गर्भोत्पत्ति का ही है, फिर भी हम 'नियोजन' के संभावनापरक रूप में इस ग्रंथ को मान सकते हैं । उदाहरणार्थ नारी के लिये निर्देश देते हुए ग्रंथकार ने उल्लेख किया है—

"आरनालपरिपोषितं त्र्यहं बाणपुष्पसहितं तु कामिनी ।
सत्पुराणगुणमुष्ट (ष्टि)-सेविनी नैव गर्भं धरते कदाचन ॥२५०॥३३॥"

और इसी तरह पुरुष के लिये भी ग्रन्थकार ने निर्देश दिया है कि—

"कांचनस्य फलमूलदलानां पूगचूर्णसहितेन रसेन ।
लिंगलेपमसकृत्प्रहरार्द्धं बिन्दुवेगधरणाय निबद्धम् ॥३५०॥ ५८ ॥

इसी तरह के लुके-छुपे प्रयोग आयुर्वेद में मिलते हैं, जो प्राकृत हैं, आज की तरह अप्राकृत उन्हें नहीं कहा जाता। प्राकृत उपाय जहां देह को हानि या कष्ट नहीं पहुंचाते, प्रत्युत देह की स्वस्थता में भी वृद्धि करते हैं। किन्तु, आज के अप्राकृत योग देह को कष्ट भी पहुँचाते हैं एवं देहस्थ धातुओं को दूषित कर देह को सदा-सर्वदा के लिये रोगायतन बना देते हैं जिससे हमारा जीवन क्लान्त एवं दुःखी बन जाता है, भार बन जाता है जो उठाये मुश्किल से उठता है।

पुरातन काल में एवं वर्त्तमान में भी मानव का एक आदर्श रहता था एवं है। उसी आदर्श के अनुसार उसकी भावनाएँ बना करती थीं। मानव अपनी उपयोगिता दूसरों के लिये मानकर संसार में जीने की इच्छा रखता है, नहीं कि अपनी उपयोगिता वह अपने स्वयं के लिये मानकर जीये। अवश्य दोनों ही तरह के मानव पाये जाते हैं पर दोनों में श्रेष्ठ 'परार्थजीवी' ही माने गये एवं माने जाते रहे हैं। परन्तु, आज पाश्चात्यसंस्कृत्यनुरागी भयंकर रूप में 'स्वार्थ-जीविता' का उपदेश बड़ी उदारता से देते जा रहे हैं। 'परार्थजीवी' गरीब अवश्य होते हैं पर वे गरीबी का अनुभव नहीं करते, कारण वे मूलतः अपरिग्रही होते हैं। किन्तु, उनमें भी दुर्बलमतियों की गरीबी को लक्ष्य कर बार २ उन्हें कचोटने पर जब उनका अपरिग्रह गरीबी के रूप में उभार लेता है तब हमारे दिमाग में पाश्चात्य उपदेश—'स्वार्थ जीविता' घर करने लग जाता है और हम उतावले होकर अपने आप के लिये जीने की भावना बनाने लगते हैं और कृत्रिमसाधनों द्वारा प्राकृत सुख की लालसा करते हैं जो कहीं मिल जाता है और कहीं हमें ही आत्मसात् कर लेता है।

श्रीकल्याणमिश्र ने बालतंत्र को जिन चौदह पटलों में सम्पूर्ण किया है, उन चौदह पटलों के नाम इस प्रकार हैं— १. षोडश वंध्या-प्रतीकार, २. साधारण वंध्यौषध, ३. पुरुषवीर्यवृद्धि, ४. गर्भाधानकाल, ५ गर्भ-रक्षा, ६. सुख-प्रसवोपाय-

कथन, ७, दिवसगृहीतबालग्रहहर, ८. मासेषु गृहीतबालग्रहहर, ९. वर्षगृहीत-बालग्रहहर, १०. दिन-मास-वर्षेषु बालग्रहोपाय, ११. साधारणबालग्रहाविष्टे चेष्टोद्वर्तन-स्नान-धूपादिविधान, १२. ज्वरहरणोपाय, १३. शीतला-चिकित्सा और १४. नानाप्रयोगकथननामक चतुर्दश पटल हैं ।

'बालतंत्र' में विशाल चार पटलों द्वारा 'बालग्रह' पर विशेष प्रकाश डाला गया है । ऐसा प्रतीत होता है कि ग्रंथकार का मूल विषय ही यही है । 'बालग्रह' सोलहवीं शताब्दी में अपने चरम उत्कर्ष पर विश्राम कर रहा था, कारण ७वीं शताब्दी मे नाथ-संस्कृति में ही इसमें विशेष उभार आया एव पन्द्रहवीं शताब्दी में इसका पूर्ण उत्कर्ष हो चुका था; किन्तु सोलहवीं शताब्दी में आज की तरह परिवार-नियोजन की भावना तत्कालीन समाज में प्रशासकों की दमन-नीति के कारण जागृत हुई थी और संभवत: उसी भावना के आधार पर ग्रन्थकार ने 'तीन संतान मात्र' के लक्ष्य को लेकर 'बालतंत्र' का प्रणयन किया । वह काल भारतीयों का ऐसे ही कार्यक्रम के आधार पर चला करता था एवं जन-मानस की ऐसी ही विश्वासता उस काल में थी ।

हमारे शास्त्रों की मान्यता है कि "तृतीये मासि सर्वेन्द्रियाणि सर्वाङ्गा-वयवाश्च यौगपद्येनाऽभिनिर्वर्त्तन्ते ।" (च. शा. अ. ४-११), और भी—"तस्य यत्कालमेवेन्द्रियाणि सन्तिष्ठन्ते, तत्कालमेव चेतसि वेदनानिर्वन्धं प्राप्नोति, तस्मात्तदा-प्रभृति गर्भः स्पन्दते, प्रार्थयते च जन्मान्तरानुभूतं यत्किञ्चित् तद् द्वैहृदय्यमाचक्षते वृद्धाः ।" (च. शा. अ. ४-१५) और सुश्रुत में—"सर्वाङ्ग-प्रत्यङ्गविभागः प्रव्यक्ततरो भवति, गर्भ-हृदयप्रव्यक्तीभावाच्चेतनाधातुरभिव्यक्तो भवति, कस्मात् ? तत् स्थानत्वात्, तस्माद् गर्भश्चतुर्थे मास्यभिप्रायमिन्द्रियार्थेषु करोति, द्वि-हृदयां च नारीं दौहृदिनीमाचक्षते ।" (सु. शा. अ. ३-१८) ।

अर्थात् जीव के मानसिक व्यापारों का प्रारंभ चौथे महीने से हो जाता है, उसका हृदय धड़कना प्रारंभ होता है और चूंकि वह चेतना-स्थान है, इसलिये चेतना-धातु अधिक प्रमाण में व्यक्त होता है, गर्भ इन्द्रियार्थों की इच्छा करता है । इस अवस्था में माता में दो हृदय होते हैं, इसीलिये उसे 'दौहृदिनी' कहते हैं । गर्भ में इन्द्रियों के उत्पन्न होते ही उसके चित्त में सुख और दुःख के भाव उत्पन्न होने लगते हैं । इन वाक्यों से ज्ञात होता है कि गर्भावस्था के काल से ही मनुष्य के मानसिक एवं शारीरिक व्यापारों का

प्रारंभ होता है। मन के विकास से ही उसकी गुप्तशक्तियों का आविर्भाव हुआ करता है। जैसे बोज के भीतर सूक्ष्मरूप से वृक्ष रहता है और बीज से अंकुर निकल कर वृक्षरूप में परिणत होता है उसी प्रकार गर्भावस्था में मनुष्य के चित्त में गुप्तरूप में स्थित उसकी शक्तियां प्रतिदिन विकसित होतीं होतीं अन्त में वे सम्पूर्ण चित्त के रूप में परिणत हो जाती हैं।

"सत्त्ववैशेष्यकराणि पुनस्तेषां प्राणिनां मातापितृसत्वान्यन्तर्वत्न्याः श्रुतयश्चाभीक्ष्णं स्वोचितं च कर्म सत्वविशेषाभ्यासश्चेति।" (च०शा०अ० ८/१६.)

टीका—"मातापितृसत्वानीति मातापित्रनुकारेण सत्वानि प्रायः प्रभावाद् एव भवन्ति। अन्तर्वत्नी गर्भिणी। श्रुतयश्चाभीक्ष्णमिति। यथा गर्भिणी गीतादि शृणोति, तथा सत्वमपत्यं जनयति। स्वोचितं च कर्मेति गर्भेणोपार्जितं कर्म स्वबलानुरूपं सत्वं जनयति। सत्वं विशेषाभ्यासश्चेति यथाविधं सत्वं पुरुषोऽभ्यस्यति जन्मान्तरे, तत् सत्वं एव जायते"। वचनं हि—

"जन्म-जन्म-यदभ्यस्त दानमध्ययनं तपः।
तेनैवाभ्यासयोगेन तच्चैवाभ्यस्यते पुनः॥" (चक्रपाणिदत्त)।

यों अनुमान लगा सकते हैं कि (क) लिङ्ग-देह के साथ आने वाला आत्मा नये कललात्मक स्थूलदेह का आश्रय लेता है; (ख) इस नये देह पर माता पिता के स्थूलदेह के संघटन (रचना) का प्रभाव जिस तरह होता है; (ग) उसी प्रकार माता-पिता के मानसिक संस्कारों का प्रभाव भी गर्भ के मन पर होता है। यहां यह भी याद रखना होगा कि हमारे विचार-प्राबल्य का प्रभाव, स्रोतोहीन ग्रंथियों के स्रावों द्वारा हमारे रुधिर के रासायनिक संघटन पर होता है। इसलिये यह निःसंकोच मान सकते हैं कि यही रुधिर-प्रवाह जन्म के पहिले गर्भ पर प्रभाव डालता है एवं गर्भ का अपना कर्म-बल अर्थात् इस स्थिति में धर्माधर्मरूप संस्कार बल—यह उसके पूर्वजन्म में मन पर जैसे संस्कार उत्पन्न होते हैं उसी के अनुरूप होता है "येनास्य खलु प्रयतः भूयिष्ठम्, तेन द्वितीयायां वा जातौ संप्रयोगो भवति।" (च० शा० अ० ३/१९)

उपर्य्युक्त पृष्ठभूमि के साथ अब हम बालकों को ग्रह-बाधा क्यों होती है? इस पर विचार करें तो, सुश्रुत का कथन इस प्रकार है—

"धात्रीमात्रोः प्राक्प्रदष्टापचारान्, शौचभ्रष्टान्मंगलाचारहीनान्॥
त्रस्तान हृष्टांस्तर्जितान् क्रंदितान्वा, पूजाहेतोर्हिस्युरेते कुमारान्॥"

अर्थात् धाय व माता के दुष्ट आचरणों से युक्त, मल--मूत्र से भ्रष्ट, मंगलाचार से हीन, त्रस्त, हृष्ट, पीटे गये तथा रोते हुए बालकों को ये ग्रह पूजा के हेतु मार डालते हैं। ग्रह-बाधा के इतिहास की ओर यह सङ्केत सुश्रुत-संहिता के उत्तर-तंत्र में पाया जाता है—"कुमार स्कद की रक्षा एवं मन-बहलाव के लिये देवाधिदेव महादेव ने इन ग्रहों की सृष्टि की थी। जब कुमार स्कंददेव सेनानी के पद पर नियुक्त हो गये तब देवाधिदेव महादेव ने ग्रहों को आदेश दिया कि—"तुम्हारी सुन्दरवृत्ति बालकों में होगी; जिन कुलों में देवता, पितृ, ब्राह्मण, साधु, गुरु, अतिथि का सत्कार नहीं होता है, जिस कुल से आचार और पवित्रता जाती रहती है, जो पराये पाक को खाने वाले हैं, जो बलिदान व भोज नहीं देते, टूटे-फूटे काँसी के पात्रों में भोजन करते हैं, उन घरों के बालकों को तुम निःशंक होकर ग्रहण कर लो, वहां तुम्हारी वृत्ति एवं पूजा दोनों ही होंगी।" इसीलिये ग्रह-गृहीत बालक दुश्चिकित्स्य माने गये हैं।

उपर्युक्त प्राचीन इतिहास को देखते हुए हमें एक बात का ध्यान रखना चाहिये--भारत कभी भी धर्म-हीन नहीं रहा, धर्म की परिभाषा उसने कर्त्तव्य से की है। कर्त्तव्य के पालन पर जितना जोर भारत में दिया गया उतना कहीं पर नहीं दिया गया। इसी कारण विश्व में इसे श्रेष्ठत्व प्राप्त हुआ। एक प्रकार से धर्म एवं कर्त्तव्य पर्यायवाची शब्द बन गये; अतः कालान्तर में कहीं धर्म को कर्त्तव्य एवं कर्त्तव्य को धर्म लिखा जाने लगा जब कि अर्थ दोनों का एक ही था। पारतन्त्र्य-युग में धर्म को सम्प्रदाय मान लिया गया और वही प्रवृत्ति आज धर्म-निरपेक्षता को घसीट लाई जो हमारे मौलिक दृष्टिकोण से सर्वथा विपरीत है। एक उदाहरण लें—हमारा कर्त्तव्य (धर्म) था कि हम प्रत्यक्षतः माँ को देवता के समान पूजें, इसी तरह पिता, अतिथि तथा गुरुजनों को भी। अब इसमें क्या बुरा है? पर विदेशी शासकों ने इसके प्रति नाक-भों सिकोड़ा। कहने का अभिप्राय यही है कि आज का युग पूर्व युग से परिवर्त्तित है। पहिले की बातें हमारे दिमाग में से योजनापूर्वक निकाली गई हैं जब कि निकालने वालों ने उस पर शोध की एव सत्यांश को प्राप्त कर नये सांचे में उसी को ढाला—जैसे ग्रह-गृहीत पर तो नाक-भों सिकोड़े परन्तु, कीटाणुवाद के रूप में उसे ग्रहण किया! अतः आज भारतीयों में भारतीयता के प्रति अनुराग की प्रवृत्ति को जगाना ही साहित्य का एक मात्र लक्ष्य होना चाहिये। अस्तु।

श्रीकल्याणमिश्र ने काश्यप-संहिता, सुश्रुत-संहिता, चरक-संहिता आदि समस्त आयुर्वेद वाङ्मय एवं आगम-ग्रंथों का आलोडन कर बालतंत्र' की रचना की है। इन्होंने बड़ी सूक्ष्म दृष्टि से कौमारभृत्य का अवगाहन किया एवं कहीं कुछ बढ़ाया और कहीं कुछ घटाया भी। प्रस्तुत बालतंत्र' के ग्रहों में—१ योगिनी, सुनंदना, पूतना, मुखमण्डलिका, विडालिका, द्वारिका, कालिका, कामिनी, मदना, रेवती, पूतनान्विता, पूतना अद्भुताख्या, भद्रकाली, ताराश्रीयोगिनी, योगिनी, पूतनाकुमारी आदि वर्ष, मास, दिवसों (तीनों में) में बालक को दुःखी करती हैं। इसी तरह—नंदिनी, सनंदना, घंटाली, कटकोली, हुकारी, ईषद्राई-पट्कारी, हिंसिका, भीषणी, मेघा और रोदना प्रारंभ के १० दिनों में बालक को दुखी करती हैं। और कुमारी योगिनी, मुकुटा-ग्रही, गोमुखी, पिंगला, वड़वा, पद्मा पूतना अर्जिका, कुभकर्णिका, तापसी, सुग्रही और बालिका ये जन्म से लेकर बारह मासों तक बालक को दुःखी करती हैं। इसी तरह–नन्दिनी, रोदनी, धनदा, चचला, नर्त्तकी, यमुना, कुमारिका, कलहंसा, देवदूती, बा (का) लिका, यक्षिणी स्वच्छदा कपी और दुर्जया जन्म से लेकर १६ वर्षों तक बालक को खतरे से खाली नहीं रखतीं।

अन्यान्य आयुर्वेदिक सहिता-ग्रंथों में इतना विशद विवेचन कहीं नहीं मिलता। इसी तरह चिकित्सा में भी श्रीकल्याणमिश्र ने बड़ा ही सौकर्य प्रदर्शित किया है जो पढ़ते ही बनता है। श्रीमिश्र तत्कालीन समय के आधुनिकों-सुधारकों में से अन्यतम सुधारक थे। उनका लक्ष्य प्रचलित परम्परा में सुधार का था। वे अवश्य सीमित संतति के समर्थक थे, परन्तु वे सन्तति पोषण के एकान्ततः सर्वाग्रही थे। वे समय के जहां प्रबल पृष्ठपोषक थे वहां दुर्दमनीयावस्था में प्रयत्नों का भी महत्त्व स्वीकार करते थे। इन सारी बातों को देखते हुए कहा जा सकता है कि श्रीकल्याणमिश्र १७वीं शती के परिवार-नियोजकों में अपनी भांति के एक ही थे। इसलिये अपने ग्रंथ को 'संग्रहग्रंथ' कहते हुए भी उन्होंने इसे मौलिकता प्रदान की है जो कि आज के युग में सर्वथा उपादेय है।

उपर्युक्त विवेचन से हमें ज्ञात होता है कि श्रीकल्याणमिश्र, आयुर्वेद एवं आगम-ग्रंथो के तत्कालीन सारग्राही विद्वानों में से एक थे। कारण, चिकित्सा आयुर्वेदीय ग्रथों से एवं मन्त्रों का निदेशन आपने आगम-ग्रंथों का सूक्ष्म परिशीलन कर, किया है। 'तन्त्रसार' आदि आगम-ग्रथों में भी इनका उल्लेख पाया जाता है। चिकित्साधीन द्रव्य प्राप्त करने पड़ते हैं, पर मन्त्रों द्वारा तो

चिकित्सक पूर्ण आत्मावलम्बी रहता है जिसकी कि आज के कृत्रिम युग में एकान्त आवश्यकता है ।

भारतीय साहित्यकार अनादि-काल से स्वात्म-प्रकाशन से दूर ही रहा करते थे । वे मात्र पते की बात किया करते थे । कारण, सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूप से ज्ञान के भण्डार को छोटे से स्थल में निवेशित करना ही वे अपना प्रथम कर्त्तव्य मानते थे, वहां स्वात्म-प्रकाशन की तो बात ही नहीं उठती ? आज के युग में ग्रंथकर्त्ता के परिचय की भूख पाठकों में और जनता में प्रबलतर होती जा रही है । इसी सन्दर्भ में हमने श्रीकल्याण मिश्र के ऐतिहासिक परिचय की शोध की तो ज्ञात हुआ कि बालतन्त्रकार श्रीकल्याणमिश्र अहिच्छत्रान्वयी रामदास के पौत्र एव महर्षि महीधर के पुत्र थे जैसा कि प्रस्तुत ग्रन्थ के ग्यारहवें एवं चौदहवें पटल में उद्धृत पुष्पिका से स्पष्ट होता है—

अहिच्छत्रान्वये जातः पण्डितैकशिरोमणिः ।
रामचन्द्रार्चनरतो रामदासः सतां प्रियः ॥१४प० ॥२७॥

विद्वज्जनाह्लादकरो मनस्वी महीधरः सर्वजनाभिवन्द्यः ।
लक्ष्मीनृसिंहांघ्रिसरोजभृङ्गस्तदात्मजोऽभूद्विदितागमार्थः ॥२८॥

कल्याण इत्युद्गतनामधेयस्तदात्मजो ग्रन्थवरान् विलोक्य ।
परोपकाराय बबन्ध तन्त्रं सतां समालोकनयोग्यमेतत् ॥२९॥

युगवेदरसाका (सैक) संमिते वर्षे नभे रवौ ।
पूर्णिमायां चकारेदं लिलेख च शिवालये ॥३०॥

इसी बात का सङ्केत श्रीमहीधर द्वारा विरचित 'मन्त्रमहोदधि' नामक ग्रन्थ के अन्तिम पचीसवें तरङ्ग में उल्लिखित निम्न पद्यों में मिलता है—

"अहिच्छत्रं द्विजच्छत्रं वत्सगोत्रसमुद्भवः ।
आसीद्रत्नाकरो नाम विद्वान् ख्यातो धरातले ॥१२१॥

तत्तनूजो रामभक्तः फनूभट्टाभिधोऽभवत् ।
महीधरस्तदुत्पन्नः संसारासारतां विदन् ॥१२२॥

निजदेशं परित्यज्य गतो वाराणसीं पुरीम् ।
सेवमानो नरहरिंस्तत्र ग्रन्थमिम व्यधात् ॥१२३॥

कल्याणाभिधपुत्रेण तथान्यैर्द्विजसत्तमैः ।
अनेकानागमग्रन्थान् विलोकितमुनीश्वरैः ।।१२३।।

एकग्रन्थस्थितं सर्वं मन्त्राणां सारमिप्सुभिः ।
सम्प्रार्थितः स्वमत्यासौ नाम्ना मन्त्रमहोदधिः ।।१२५।।

अब्दे विक्रमतो जाते वेदबाणनृपैर्मिते ।
ज्येष्ठाष्टम्यां शिवस्याग्रे पूर्णो मन्त्रमहोदधिः ।।१३२।।

इस प्रकार हमारे श्रीकल्याण मिश्र अहिच्छत्र-द्विजच्छत्रके वत्सगोत्रिय श्रीरत्नकार के पुत्र रामभक्त 'फनूभट्ट' के पुत्र श्री महीधर से उत्पन्न हुए। वे अपने पिता के साथ अपने देश को छोड़ कर वाराणसीपुरी पधारे। वहां आचार्य महीधर ने श्रीनरहरि की सेवा में रहते हुए 'कल्याण' नामक अपने पुत्र तथा द्विजसत्तमों के साथ अनेकानेक आगमग्रन्थों के निष्णात मुनीश्वरों के वचनों को एकत्र कर सारतत्वबोधी विद्वानों की इच्छा पूरी करनेहेतु एक ही ग्रंथ मन्त्र-महोदधि' की रचना की। अतः हमारे ग्रंथकार श्रीकल्याण मिश्र भी 'ऋषयो-मन्त्रद्रष्टारः' की ही परम्परा के एक त्रिकालज्ञ ऋषि थे इसमें हमें कोई संशय नहीं है।

'मन्त्रमहोदधि' के उपर्य्युद्धृत पद्यों से जहाँ इस बात की सम्पुष्टि होती है कि श्रीकल्याण श्रीमहीधर के ही पुत्र थे वहाँ 'फनूभट्टाभिधोऽभवत्' महीधर-स्तदुत्पन्नः' इस पद्यांश से यह भी कुछ भ्रम हो सकता है कि श्रीकल्याण मन्त्र-महोदधिकार श्रीमहीधर के ही पुत्र थे किंवा अन्य महीधर के। किन्तु, इस भ्रम का समाधान 'बालतन्त्र' एव 'मन्त्रमहोदधि' के ही पद्यों से स्वतः हो जाता है। जैसा कि निम्न विवेचन से ज्ञात होगा—

१. श्रीकल्याण स्वयं को अहिच्छत्रान्वयी रामदास का पौत्र मानते हैं[1] और श्रीमहीधर भी अपने को अहिच्छत्रान्वयी रामभक्त 'फनू भट्ट' का पुत्र[2]।

२. श्रीकल्याण अपने पिता श्रीमहीधर को भगवान् श्रीलक्ष्मीनृसिंह का

---

१. 'अहिच्छत्रान्वये जातः...,'रामदासः सतां प्रियः' आदि। (बा. तं.)

२. 'अहिच्छत्रं द्विजच्छत्रं ........तत्तनूजो रामभक्तः फनूभट्टाभिधोऽभवत्, महीधर स्तदुत्पन्नः'। (मं. म.)

अनन्य भक्त घोषित करते हैं[1] और श्रीमहीधर भी स्वयं को श्रीलक्ष्मीनृसिंह का अनन्य उपासक मानते हैं[2]।

३. श्रीमहीधर अपने साथ अपने पुत्र कल्याण को वाराणसी ले जाने का सङ्केत करते हैं[3] और श्रीकल्याण भी प्रस्तुत बालतन्त्र का रचना-स्थान वाराणसी को बतलाते हैं[4]।

उक्त विवेचन से सुस्पष्टतः यह सम्पुष्टि हो जाती है कि श्रीकल्याण मन्त्रमहोदधिकार श्रीमहीधर के ही पुत्र थे और उन्होंने बालतन्त्र में अपने पितामह के प्रसिद्ध नाम 'रामदास' का ही उल्लेख किया; क्योंकि हमारे अभिमत में इसका कारण यही हो सकता है कि 'फनूभट्ट' उस समय में भगवान् श्रीरामचन्द्र के अनन्यभक्त होने के कारण 'रामदास' या 'रामभक्त' के नाम से प्रसिद्धि पाचुके थे।

---

१ 'महीधरः सर्वजनाभिवन्द्यः, लक्ष्मीनृसिंहाङ्घ्रिसरोजभृङ्गः'। (बा. तं.)

२. 'प्रणम्य लक्ष्मीनृहरिं महागणपतिं गुरुम्।
तन्त्राण्यनेकानालोक्य वक्ष्ये मन्त्रमहोदधिम् ॥१॥ (मंत्रमहोदधि–तरङ्ग—१)
नरसिंहो महादेवो महादेवार्त्तिनाशनः।
मुदे परां महालक्ष्म्या देवावरनतोऽस्तु मे ॥१२८॥ (म. म. तरङ्ग—२५)
नृसिंह उत्सङ्गसमुद्रजो मां समुद्रजद्वीपगृहे निषण्णः।
समुद्रजो हीनमतिः सदाऽव्यात् समुद्रभक्ताखिलसिद्धिदायी। ॥१२९॥"
राजा लक्ष्मीनृसिंहो जयति सुखकरं श्रीनृसिंहं विजेयं,
दैत्याधीशा महान्तो वसत नृहरिणा श्रीनृसिंहाय नौमि।
सेव्यो लक्ष्मीनृसिंहादपर इह न हि श्रीनृसिंहस्य पादौ,
सेवे लक्ष्मीनृसिंहं वसतु मम मनः श्रीनृसिंहाच्च भक्तम् ॥१३०॥ („)

३. 'निजदेशं परित्यज्य गतो वाराणसीं पुरीम्।......कल्याणभिधपुत्रेण०' (म०म०)

४. 'पूर्णिमायां चकारेदं लिलेख च शिवालये'। (बा० तं०)

**सम्पादन—**

प्रस्तुत ग्रन्थ का सम्पादन प्रतिष्ठान में उपलब्ध तीन प्रतियों के आधार पर किया गया है जब कि प्रतिष्ठान में इस ग्रन्थ की कुल पांच प्रतियाँ प्राप्त हैं। प्राप्त पांचों प्रतियों में एक प्रति सर्वथा अपूर्ण अर्थात् पञ्च पटलात्मक होने तथा दूसरी प्रति सर्वथा नवीन एवं अधिकत: अशुद्ध होने से इन दोनों प्रतियों का उपयोग इस ग्रन्थ के सम्पादन में नहीं किया गया है। जिन तीन प्रतियों का उपयोग इस सम्पादन में हुआ है उनका संक्षेपत: विवेचन इस प्रकार है—

इस पुस्तक में जिस प्रति का पाठ मूल पाठ (आदर्श पाठ) के रूप में ग्रहण कर ऊपर प्रदर्शित किया गया है उसे यहाँ पर क. प्रति के नाम से सम्बोधित किया गया है तथा अन्य प्रतियों को ख. और घ. नाम से अभिहित कर उनके पाठान्तर पाद-टिप्पणी के रूप में अङ्कित किये गये हैं। कहीं-कहीं ख.घ. प्रतियों के सङ्गत पाठ को मूल रूप में स्वीकार कर टिप्पणी के रूप में मूल प्रति का पाठ दिया गया गया है। उल्लेखनीय है कि क. एवं ख. प्रति में ११ पटल पाये जाते हैं जब कि घ. प्रति में चौदह पटल पाये जाते हैं। जहाँ अन्य प्रतियों में ११ वाँ पटल ६ पद्यों में ही आबद्ध है वहाँ घ. प्रति में उक्त पटल ६७ पद्यों में समाप्त होता है। अत: हमने इस पुस्तक में घ. प्रति का पाठ ११ वें पटल के ७ वें पद्य से प्रारम्भ कर चतुर्दश पटल तक मूल रूप में प्रकाशित किया है।

प्राप्त प्रतियों के विवेचन से यह आशङ्का होती है कि प्रस्तुत ग्रन्थ एकादश पटलात्मक है किं वा चतुर्दशपटलात्मक ? यद्यपि इस आशङ्का का निवारण तब तक नहीं हो सकता है जब तक कि पुष्ट प्रमाण उपलब्ध न हों। फिर भी इस सम्बन्ध में हमारे विचार से यह सम्भावना की जा सकती है कि उक्त ग्रन्थ का सृजन प्रथमत: एकादश पटलों में ही किया गया होगा तथा इसमें ३ पटलों की बाद में संवृद्धि की गई होगी जैसा कि एकादशपटलात्मक प्रतियों के अधिकत: प्राप्त होने तथा ग्रन्थगत सामग्री के सङ्कलनक्रम से आभास होता है। ज्ञातव्य है कि प्रस्तुत ग्रन्थ में ११ पटलों तक बालकों की तान्त्रिक चिकित्सा एवं तदनन्तर ३ पटलों में सर्वजनोपयोगिनी आयुर्वेदिक चिकित्सा उपनिबद्ध है। इससे यह सङ्केत मिलता है कि श्रीकल्याण इस ग्रन्थ में प्रथमत: तान्त्रिकचिकित्सा को ही उपनिबद्ध करना चाहते होंगे और

उन्होंने बाद में आयुर्वेदिक चिकित्सा को भी उपनिबद्ध करना उचित समझा होगा । अस्तु, यह विषय अवश्य ही गवेषणीय है ।

**प्रतिपरिचय—**

१. क. ग्रन्थाङ्क—५८६३; रचनाकाल—१६४४ विक्रम संवत् । लिपिकाल—१९२८ ( विक्रम ) माप — २९×१४ सेन्टीमीटर; पत्रसंख्या—१२; पङ्क्ति—१३; अक्षर—७४; लिपिकर्त्ता—लक्ष्मीनारायण ।

प्रति सुन्दर, सुवाच्य, सूक्ष्माक्षर एवं अपेक्षाकृत शुद्ध है तथा इसमें ११ पटल उपनिबद्ध हैं ।

२. ख. ग्रन्थाङ्क—४२००; रचनाकाल—१६४४ ( विक्रम ) लिपिकाल—१८वीं शताब्दी (विक्रम); माप—२२.५×१०.१ से.मी.; पत्रसख्या—३८; पङ्क्ति—८; अक्षर—३४;

एकादशपटलात्मक यह प्रति सुवाच्य तथा प्राचीन है किन्तु इस में ३ से १२ तक पत्रों का अभाव है ।

३. घ. ग्रन्थाङ्क—६६५७; रचनाकाल—१६४४ (विक्रम); लिपिकाल—१८९४ (विक्रम): माप—२३.५×१०.८ से.मी.; पत्रसंख्या—६०; पङ्क्ति ८; अक्षर—३६; लिपिकर्त्ता—पोकरमल्ल ब्राह्मण; लिपिस्थान—झालरापाटरण ।

इस प्रति में १४ पटल हैं तथा यह प्रति सुवाच्य अक्षरों में लिखित साधारणतः ठीक है ।

४. अप्रयुक्त: ग्रन्थाङ्क—५८४१; रचनाकाल—१६४४ (विक्रम); लिपिकाल-२० वीं शताब्दी (विक्रम) माप—२६.५×१२.६ से.मी.; पत्रसंख्या—२३; पङ्क्ति—१२; अक्षर—३८ ।

एकादशपटलात्मक यह प्रति सर्वथा नवीन एवं सुवाच्य अक्षरों में लिखित है, किन्तु अशुद्ध है ।

५. अप्रयुक्त; ग्रन्थाङ्क—२२८५४; रचनाकाल—१६४४ (विक्रम) लिपिकाल--१६ वीं शताब्दी; माप—३२.५ × १६.५ से.मी.; पत्रसंख्या—७; पङ्क्ति—१७; अक्षर—४८ ।

इस प्रति में केवल १ से ५ ही पटल प्राप्त हैं तथा यह प्रति अत्यन्त अशुद्ध एवं जीर्ण-शीर्ण है ।

**आभारप्रदर्शन—**

प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान जोधपुर, एवं वर्त्तमान में उसके सम्पादन-विभाग के मुख्याधिकारी श्रीलक्ष्मीनारायणजी गोस्वामी, जिन्होंने मुझे इस बालतंत्र के सम्पादन को प्रेरणा जन-कल्याणार्थ दी वह वस्तुतः सामयिकी एवं दूरदर्शिता की परिचायक थी, ऐसी मेरी मान्यता है । आशा है कि विद्वान् पाठकवृन्द इसके अध्ययनाध्यापन से जनता को लाभान्वित करेंगे ।

प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान ने इस ग्रंथ के मुद्रण की व्यवस्था कर वास्तव में आयुर्वेदीय अधुनातन वाङ्मय में एक रत्न की वृद्धि की है, एतदर्थ उसके सुयोग्य तत्कालीन निदेशक डॉ० फतहसिंहजी वैद्यसमाज में धन्यवाद के पात्र हैं । हमारी कामना है कि इसी प्रकार डॉ० साहब तथा आगामी अधिकारी भी कुछ रत्न आयुर्वेदीय वाङ्मय को प्रदान कर उसकी श्री-वृद्धि में अपना स्वस्थ सहयोग देंगे।

अन्त में सनम्र निवेदन है कि विद्वान् पाठक इस ग्रन्थ में दृष्टि—चाञ्चल्य एवं मुद्रण-दोष से कहीं त्रुटियाँ रह गई हों तो शुद्ध करते हुए मुझे क्षमा प्रदान करेंगे ।

विदुषाम्प्रियः—

**कविराज विष्णुदत्त पुरोहितः ।**

श्रीकल्याणनिर्मितम्

# बालतन्त्रम्

## अथ बालचिकित्सा

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीधन्वन्तरयेनमः ॥

विघ्नव्रततिविध्वंसकारिणं दुःखकारिणम्[1] ।
कल्याणोऽहं नमस्कुर्वे विघ्नेशं ग्रन्थसिद्धये ॥१

प्रयोगसारप्रमुखागमेषु, प्रोक्तेषु शास्त्रेषु च सुश्रुताद्यैः ।
यदुक्तमेकत्र वितन्वतेऽस्मिन्[2] ग्रन्थो मया तत्खलु बालतन्त्रम् ॥२

अष्टौ दोषास्तु नारीणां नवमं पुरुषस्य च ।
रक्तपित्तं तथा वातं श्लेष्मा च सान्निपातिकम् ॥३

ग्रह-दोषविकाराभ्यां[3] देवतानां प्रकोपतः[4] ।
अभिचारकृतैर्दोषै रेतोहीनः[5] पुमांस्तथा ॥४

काकवंध्या मृतवत्सा गर्भस्रावी तु च या स्त्रियः ।
आदिवंध्या च गीयन्ते दोषैरेभिर्न चान्यथा ॥५

पुष्पं तु[6] जायते तस्या. फलं तस्या न विद्यते ।
तस्माद्दोषविकारांश्च ज्ञात्वा कर्म समारभेत् ॥६

यस्याः पित्तहतं पुष्पं प्राज्ञः समुपलक्षयेत् ।
पक्वजम्बूफलाकारं कृत्स्नं स्रवति शोणितम् ॥७

कटिशूलं भवेत्तस्या उदरं परिदह्यते ।
ज्वरं च करोत्युष्णमेतत्पित्तस्य लक्षणम् ॥८

तस्यौषधं[7] प्रवक्ष्यामि येन गर्भोऽभिजायते ।
उत्पलं तगरं कुष्ठं यष्टीमधुकचन्दनम् ॥९

---

१. ख. हारिणं । २. ख. विनित्यतेस्मिन्, घ. विवध्यते । ३. ख. बिकारेण । ४. ख. प्रकोपने, घ. प्रकोपनं । ५. रेतैः, घ. नैव । ६. ख. घ. न । ७. ख. घ. प्रत्यौषधं ।

एतानि समभागानि अजाक्षीरेण पेषयेत् ।
त्रिरात्रं पंचरात्रं वा यावच्छ्रवति शोणितम् ॥१०

ततो योन्यां विशुद्धायामिमां दद्यान्महौषधीः ।
लक्ष्मणां क्षीरसंयुक्तां नस्ये पाने[1] प्रदापयेत् ॥११

तेन सा लभते पुत्रं रूपवन्तं महाकविम् ।
यस्या वातहतं पुष्पं फलं तस्या न विद्यते ॥१२

अतिसूक्ष्मतरं रक्तं कुसुम्भोदकसन्निभम् ।
कटिशूलं भवेत्तस्या योनिशूलं तथा ज्वरम् ॥१३

सहकारस्य मूलानि तथा व्याघ्रनखस्य च ।
वृहतीजाम्ववीमूलं क्षीरेणालोड्य तत्पिबेत् ॥१४

सप्ताहं पंचरात्रं वा यावच्छ्रवति शोणितम् ।
ततो योन्यां विशुद्धायां लक्ष्मणां क्षीरसंयुताम् ॥१५

नस्ये पाने[2] च दातव्यं तेन सा लभते सुतम् ।
यत्र श्लेष्महतं पुष्पं चिह्नं[3] तस्या वदाम्यहम् ॥१६

वहुलं पिच्छिलं रक्तं नातिरक्तं भवेत्तदा ।
नाभिमंडलदेशे तु शूलं भवति दारुणम् ॥१७

अर्कमूलं प्रियंगुं च कुसुमं नागकेशरम् ।
बला चातिबला चैव अजाक्षीरेण पेषयेत् ॥१८

त्रिफला त्रिकटुश्चैव चित्रकं समभागकम् ।
अजाक्षीरेण संयुक्तमालोड्य युवतिः पिबेत् ॥१९

त्रिरात्रं पंचरात्रं वा यावत् स्रवति शोणितम् ।
ततो योन्यां विशुद्धायां लक्ष्मणां तस्य(त्र)दापयेत् ॥२०

सन्निपातहतं[4] पुष्पं ज्वरस्तीव्रश्च जायते ।
शोणितं तु भवेत्कृत्स्नं अत्युष्मं पिच्छलं बहु ॥२१

कुक्षिदेशे[5] तथा योन्यां कटिशूलं च जायते ।
गात्रभंगो भवेत्तस्या बहुनिद्रा च जायते ॥२२

---

१. घ. नस्यपान । २. घ. नस्यपाने च । ३. घ. फलं । ४. घ. सन्निपाताहतं ।
५. घ. कुक्षि ।

गन्धर्वहस्तमूलं[1] च सहकारं त्रिवृत्तकम् ।
उत्पलं तगरं कुष्टं यष्टीमधुकचन्दनम् ॥२३

अजाक्षीरेण पिष्टं तु[2] सप्तरात्रं ततः पिबेत् ।
रजोहात्पंचरात्रं च यावच्छ्रवति शोणितम् ॥२४

ततो योन्यां विशुद्धायां श्वेतार्कक्षुद्रणी तथा ।
लक्ष्मणा वंध्यकर्कोटी श्वेता च गिरिकर्णिका ॥२५

गवां क्षीरेण संपिष्टं[3] 'नस्ये पानं प्रदापयेत्'[4]।
दक्षिणे लभते पुत्रं वामे पुत्री न संशयः ॥२६

पूर्वोक्तदोषहीनाया ग्रहदोषं न संशयः ।
जन्मपत्रीं समालोक्य ग्रहपूजां समाचरेत् ॥२७

व्रतं तस्य प्रकर्त्तव्यं मध्यमस्य ग्रहस्य च ।
विकारेण यथा[5] वंध्या स्फुटं चिह्नं तदा भवेत् ॥२८

रोगनाशे भवेद्गर्भो[6] नात्र 'कार्या विचारणा'[7] ।
देवताकोपवंध्या या तस्याः चिह्नं वदाम्यहम् ॥२९

अष्टम्यां च चतुर्दश्यां मावेशे (अमायां) वेदना तथा ।
गोत्रदेवीं समाराध्य[8] दुर्गामंत्रं ततो जपेत्[9] ॥३०

गोत्रदेवीं समभ्यर्च्य पुत्रं सा लभते ध्रुवम् ।[10]
कृत्याकृतं[11] यदा दोषं शरीरे वेदना भवेत् ॥३१

दुर्गामंत्रं जपेन्नारी ततो गर्भं[12] भवेद् ध्रुवम् ।
अन्यद् वंध्याष्टकं वक्ष्ये सर्वतंत्रेषु गोपितम् ॥३२

त्रिपक्षी सुभ्रती सद्भ्रातृमुखी व्याघ्रिणी वक्री ।
कमली यव्क्तिनी चैव तासां चिह्नं वदाम्यहम् ॥३३

त्रिपक्षा[13] नाम या वंध्या त्रिपक्षे पुष्पिता भवेत् ।
द्वे जीरके श्वेतत्वचा कर्कन्धोश्च[14] फलं समम् ॥३४

---

१. घ. हस्तिमूलं । २. घ. च । ३. घ. संपिष्य । ४. घ. नस्यपानं च दापयेत् । ५. घ. यदा । ६. घ गर्भं । ७. क. कार्यं विचारणा, घ. कार्या विचारणः । ८. क. ग. समाराध्या । ९. घ. तदं । १०. घ. समभ्यर्च्य महादेवीं पुत्रं तस्य भवेद् ध्रुवम् । ११. घ. ०कृत्यं । १२. घ गर्भो । १३. घ. त्रिपक्षी । १४. घ. कर्कोटनाश्च ।

तंदुलोदकसंपिष्टं[1] 'पिबेत् सूर्यस्य सम्मुखी'[2] ।
त्रिदिनं च पिबेन्नारी दुग्धभक्तं[3] च भोजनम् ।।३५
तेन गर्भो भवेन्नार्याः सत्यमेवन्न[4] संशय[5] ।
सुभ्रती नाम या वंध्या चिह्नं तस्या वदाम्यहम् ।।३६
गात्रं[6] संकोचते नित्यं देहे चैव विवर्णता ।
गर्भस्तस्या[7] न जायेत, सद्भा वंध्या च कथ्यते ।।३७
अप्रमाणैश्च दिवसैस्तस्याः पुष्पं प्रजायते ।
जीरं[8] वचां समङ्गां च गृह्णीयात् शुभवासरे ।।३८
कर्कोटीं शृगालकरीं[9] पिष्ट्वा तंदुलवारिणा ।
'दिनत्रयेण या नारी सूर्यस्य संमुखीभवेत्'[10] ।।३९
सदुग्धं षष्टिकान्नं च भक्षयेद्दिनसप्तकम्
तेन गर्भो भवेन्नार्यास्त्रिमुखी नाम कथ्यते ।।४०
तस्याः चिह्नं[11] प्रवक्ष्यामि मैथुने सलिलं[12] भवेत् ।
भोजने मैथुने लौल्यं गर्भं तस्या न विद्यते ।।४१
व्याघ्रिण्या उत्तरे कालेऽपत्यमेकं प्रजायते ।
'त्रिपक्षीकं प्रदातव्यमौषधं'[13] पुत्रदायकम् ।।४२
वावया संस्रवतेश्चेत दशमेष्टमके दिने ।
असाध्या चैव सा वंध्या औषध नैव कारयेत् ।।४३
सलिले[14] स्रवते योन्यां कमलिन्या निरंतरम् ।
असाध्या सा च विज्ञेया औषधं नैव कारयेत् ।।४४
व्यक्तिनीनामवंध्याया प्रमेहो भवति स्फुटम् ।
रक्तापामार्गजं बीजं शर्करामर्दकी[15] फलम् ।।४५
औषधीं[16] रत्नमालां च गोदुग्धेन प्रपेषयेत्[17] ।
त्रिसप्तदिवसं पीत्वा प्रमेहं नाशयेद्ध्रुवम् ।।४६

---

१. घ. ०संपिष्ट्वा । २. घ. सा भवेत् सूर्यसंमुखी । ३. घ. ०भक्तः । ४. घ. ०मेतन्न । ५. घ. संशयं । ६. घ. गात्र । ७. घ. तस्य । ८. घ. जीरे । ९. घ. कंकालकरिं । १०. घ. दिनत्रयं यदा नारी सूर्यस्य संमुखं पिबेत् । ११. घ. तस्य । १२. घ. स्खलितं । १३. घ. त्रिपक्ष्यौषध दातव्यं । १४. क. सलिलं । १५. घ. मर्दके । १६. क. औषधी । १७. घ. प्रलेपयेत् ।

श्रीनागकेशरं[1] चैव कर्कोटी सफला तथा ।
द्वे जीरके सवत्सागोक्षीरेण सह पाययेत् ।।४७
दिनत्रयं दुग्धषष्टिभोजनं गर्भधारकम् ।
लक्षणानि परिज्ञाय औषधं कारयेत्सुधीः ।।४८

**इति श्रीकल्याणेन कृते बालतन्त्रे षोडशवन्ध्याप्रतीकारो नाम प्रथमः पटलः ।।१।।**

## द्वितीयः पटलः

पूर्वोक्तचिह्नहीनानां प्रतीकारं वदाम्यहम् ।
द्वे जीरके श्वेतवचा वटपिप्पलिकन्दकौ ।।१
शृगालकण्ठरोमाणि कर्कोटीफलमूलके ।
सहस्रमूलीं सवत्सागोक्षीरेण दिनत्रयम् ।।२
पीत्वा सूर्यस्य सम्मुखं[2] क्षीरषष्टिकभोजनात् ।
पुष्ये वा शततारायां शंखपुष्पीं समाहरेत् ।।३
सवत्सायास्तु पयसा तां संघृष्य 'रसं पिबेत्,[3] ।
वंध्या गर्भं दधात्याशु नात्र कार्या विचारणा ।।४
श्वेतकुलत्थसंभूतं मूलं नागबलोद्भवम् ।
पराजितमृतुस्नाता[3] गोदुग्धेन समं पिबेत्[4] ।।५
दिनत्रयं तथा सप्त(प्त) गर्भो भवति नान्यथा ।
अश्वगधाभवं मूलं 'गोघृतेन समन्वितम्'[5] ।।६
ऋतुस्नाता पिबेन्नारी त्रिदिनैर्गर्भधारकम् ।
सुखेन[6] कदलीमूलं तन्मयूरशिखाभवम् ।।७
त्र्यहं गोपयसा नारी पिबेद् गर्भो भवेद् ध्रुवम् ।
बीजपूरस्य बीजानि गोदुग्धेन च पेषयेत्[7] ।।८
पिबेद् गर्भो भवेन्नार्या(र्याः) त्रिदिन षष्टिकोदनात् ।
मेषदुग्धीभवं[8] मूलं गोदुग्धेन[9] संपिबेत् ।।९

१. नागकेशरिकं । २. घ. सन्मुखः । ३. घ. गर्भः संपिबेत् । ४. घ. ऋतुस्नानान्तरं चैव । ५. घ. गोघृतं च समन्वितम् । ६. घ. मुखेन । ७. घ. पीषयेत् । ८. घ. मेषीदु० । ९. घ. गोदुग्धे च ।

ऋतुत्रयं ततो गर्भो भवत्येव न संशयः ।
त्रिफला पिप्पली द्राक्षा लोध्रं जीर्णो गुडस्तथा ॥१०

वर्तिकृता[1] योनिमध्ये क्षिप्रा सा गर्भंकरी मता ।
पिप्पली देवतादारु[2] लाक्षागुग्गुलुनिर्मिता ॥११

वर्त्तिका योनिमध्ये तु क्षिप्ता शोधनकारणी ।
शुण्ठी मुस्ता हरिद्रे द्वे बला हिंगुमिसिपुरः ॥१२

एभिर्वर्त्तिः कृता योनौ[3] क्षिप्ता शोधनगर्भकृत् ।
गन्धकं शङ्खचूर्णं च सममात्रा[4] मनःशिला ॥१३
जलेन सह संपिष्य[5] निक्षिपेद्योनिमण्डले[6] ।
वेदनाशोथकण्डूश्च गच्छत्येव न संशयः ॥१४

बला सिताढ्यातिबला मधूकं, वटस्य शुंगं गजकेशरं च ।
एतन्मधुक्षीरघृतैर्निपीतं[7], वंध्यापि पुत्रं नियतं प्रसूयते[8] ॥१५

एरण्डधात्रीफलमातुलिंगबीजानि मूलं सितकण्टकार्याः ।
दिनत्रयं क्षीरयुतं प्रपीतमेतत्सुख गर्भवरं प्रदत्ते ॥१६॥

अश्वगंधा कषायेन पयःसिद्धिघृतान्वितम् ।
प्रातः पीत्वाऽबला स्नाता[9] धत्ते गर्भं न संशयः ॥१७

पुष्पोद्धृतं सद्विधि लक्ष्मणाया, मूलं तथान्यत्सहदेविकायाः ।
घृतान्वितं कन्यकया प्रपिष्टं, दुग्धेन पीतं प्रकरोति गर्भम् ॥१८

पत्रमेकं पलाशस्य गर्भिणी पयसान्वितम् ।
पीत्वा पुत्रमवाप्नोति वीर्यवंतं न संशयः[10] ॥१९

कुरंटमूलं धातक्या कुसुमानि वटांकुराः ।
नीलोत्पलं पयोयुक्तमेतद्गर्भप्रदं ध्रुवम् ॥२०

संयोज्य तुल्यं वृषभस्य मूलं, तैलं प्रपीतं कुडवप्रमाणम् ।
स्त्रियः पयोभक्तभुजो दिनान्ते, सुत प्रदत्ते[11] नियतं प्रशस्तम् ॥२१

---

१. घ. ०कृत्वा । २. घ. देवदारु च । ३. घ. योनिः । ४. घ. मात्रा । ५. घ. संपिष्ट्वा । ६. घ. ०योनिमंडलं । ७ घ. ०घृतेन पीतं । ८. घ. प्रसूति । ९. घ. बला । १०. घ. संशय । ११. घ. प्रदत्तो ।

पुत्रमंजारिकामूलं शिवलिङ्गीफलान्वितम् ।
पुष्पोद्धृत पयोमिश्रपीतं गर्भप्रदं ध्रुवम् ॥२२

पुत्रमंजारिकामूलं विष्णुक्रान्ते सलिंगका[1] ।
पीत्वा पुत्रमवाप्नोति न कन्या जायते स्फुटम् ॥२३

रसः प्रपीतः सितकंटकारी, मूलस्य पुष्पं त्रिदिनं जलेन ।
मयूरमूलस्य च नासिकाया, दत्ते सुतं दक्षिणसंपुटेन ॥२४

मंजिष्ठा मधुकं कुष्ठं त्रिफला शर्करा वचा ।
अजमोदा हरिद्रे द्वे हिंगु तिक्तकरोहिणी ॥२५

काकोली क्षीरकाकोली मूलं चैवाश्वगंधजम् ।
[2]जीवकर्षभौ मेदे रेणुका वृहतीद्वयम् ॥२६

उत्पलं चन्दनं द्राक्षा पद्मकं देवदारु च ।
एभिरक्षसमैर्भागैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥२७

चतुर्गुणेन पयसा युक्तं तन्मृदुनाग्निना ।
एतत्सर्पिर्नरः पीत्वा स्त्रीषु नित्यं प्रवर्त्तते ॥२८

पुत्रान् जनयति श्रेष्ठान् श्रीयुक्तान्प्रियदर्शनान् ।
वंध्या च लभते गर्भं नात्र 'कार्या विचारणा'[3] ॥२९

या चैवास्थिरगर्भा स्यात् मृतवत्सा[4] च जायते ।
अल्पायुर्जनयेद्बालं[5] या च कन्या प्रसूयते ॥३०

कल्याणे[6] ये गुणाः प्रोक्तास्ते गुणाश्चात्र[7] वै भवेत् ।
एतदेव कुमाराणां सर्वग्रहविशेषणम्[8] ॥३१

गुडमेकपलं लीढा पुराणौ वावलौ कृतौ ।
रक्षिता[9] गर्भभयतः सुरतैकरता भवेत् ॥३२

आरनालपरिपोषितं त्र्यहं, [10]वाणपुष्पसहितं तु कामिनी ।
सत्पुराणगुणमुष्ट[11]-सेविनी, नैव गर्भं धरते कदाचन ॥३३

---

१. घ. सलिंगकम् । २. घ. जीवकर्षभकौ । ३ क कार्यं विचारणात् । ४. घ. मृते । ५. घ. अल्पायुषं । ६ घ. कल्याण । ७. घ. ०प्यत्र । ८. घ. सर्वं ग्रह-विश्लेषणम् । ९. क. रक्षता । १०. घ. वाणि । ११. घ. ०मुष्टि ।

पीतं ज्योतिष्मतीपत्रराजिको ग्रासनं त्र्यहम् ।
शीतेन पयसा पिष्टं कुसुमं जनयेत् ध्रुवम् ॥३४

शुंठी गुडेन संपिष्ट्वा भक्षयेद्दिनसप्तकम् ।
तेन गर्भो भवेन्नार्याः सत्यं सत्यं मयोदितम् ॥३५

**इति श्रीकल्याणेन कृते बालतन्त्रे साधारणवंध्यौषधकथनं नाम द्वितीयः पटलः ॥२॥**

## तृतीयः पटलः

शुक्रहीनस्य वै पुंसः कथयाम्यौषधीमहम्[१] ।
माक्षिकं धातुमाक्षीकं लोहचूर्णं शिलाजतु[२] ॥१

पारदंच विडंगं च पथ्याभागसमन्वितम् ।
घृतेन भावयित्वा तु पात्रे कृत्वा तु लौहजे ॥२

विडालपदमात्रं तु भक्षयेच्च दिने दिने ।
तस्य[३] व्याधिर्जरा मृत्युर्वर्षेणैकेन नश्यति ॥३

कामयेत् स्त्रीसहस्रं तु बहुशुक्रो[४] बहुप्रजः ।
कपिकच्छुकमूलं च क्षीरपिष्टं पिबेन्नरः ॥४

अक्षयं जायते शुक्रं कामयेत् स्त्रीसहस्रशः ।
माषा यवाश्वदंष्ट्रा वा वानरी शतमूलिका ॥५

पयसा पेषयेत्तेन पक्वयेत् घृतपूपकम् ।
दिनान्ते भक्षयेदेकं ततो क्षीरं पिबेन्नरः ॥६

षण्मासाभ्यन्तरे[५] चैव वृद्धोपि तरुणायते ।
मासमेकप्रयोगेन शुक्रवृद्धिर्भवेद् ध्रुवम् ॥७

धातकी[६]-त्रिफलाचूर्णं रसेनेक्षुरकेन[७] तु ।
भावयित्वा ततो धीमान्मधुशर्करसंयुतम् ॥८

---

१. घ. कथयाम्यौषधाम्यहम् । २ घ. शिलाजितं । ३. घ तस्या । ४. घ. शुक्रं । ५. घ. षण्मासाभ्यां । ६. घ. धातुकी । ७. घ. रसेन्ये० ।

जीर्णकायः पिबेल्लीढं क्षीरं पीत्वा ततो निशि ।
कामयेत् स्त्रीसहस्राणि कामाग्निस्तस्य वर्द्धते[1] ॥९

कपिकच्छुकमूलानि तिलाश्चैवाश्वगंधिका ।
विदारीकंदजं[2] चूर्णं षष्टिकातन्दुलान्वितम् ॥१०

एतानि पयसा पिष्ट्वा घृतेन सह पाचयेत् ।
दिने दिने च संभक्षेद्यदि नारी गृहे भवेत्[3] ॥११

विदारी गोक्षुरं चैव पयसा सह भक्षयेत् ।
जीर्णकाये[4] प्रदातव्यं मन्दाग्नेश्च[5] प्रदीपनम् ॥१२

माषा यवाश्वगंधा च वानरी शतमूलिका ।
कोकिलाक्षस्य बीजानि शाल्मली च शतावरी ॥१३

[6]घृतालोढ्पयः पीत्वा खंडो (षण्ढो) नारीरनेकधा[7] ।
यवमाषोद्भवं[8] चूर्णं शर्कराक्षीरमिश्रितम् ॥१४

जीर्णान्ते च पिबेत् क्षीरं शुक्रवृद्धिस्ततो भवेत् ।
धात्रीफलोद्भवं चूर्णं रसेनेक्षोः सुभावितम्[9] ॥१५

विबुधो बहुधा पश्चात् औषधीं[10] पीत्वा पुनः पुनः ।
मधुशर्करया युक्तं समभागेन कारयेत् ॥१६

पुरुषाणां च नारीणां प्रयोक्तव्यं सुतार्थये ।
नस्ये पाने तथाभ्यङ्गे तानि नित्यं च सेवयेत् ॥१७

शतावरीं तु निःपीड्य प्रस्थद्वितयमाहरेत् ।
तैलं तेन पचेत्प्रस्थं क्षीरं दद्याच्चतुर्गुणम् ॥१८

तत्तैलं च पचेद्धीरः शनैर्मृद्वग्निना शुभम् ।
औषधीनां ततो भागं दापयेत्कर्षमात्रकम् ॥१९

शतपुष्पं देवदारु 'मांसं तैलेयक त्वचा'[11] ।
चन्दनं तगरं कुष्ठं एला चांशुमती[12] तथा ॥२०

---

१. क. वद्धते । २. क. विदारीकंदसं । ३. घ. गृहं । ४. घ. जीर्णकाय । ५. घ वदनाग्नि । ६. घ. घृते० । ७. घ. ०मनेकधा । ८ घ. ०माषाभवं । ९. घ. स्तु भावितस् । १०. घ. पेष्ययित्वा । ११ मांसंशैलेयकं बचा । १२. घ. वशुमति ।

रात्स्ना चैवाश्वगंधा च बिडङ्गं मरिचानि च ।
वीलपर्णी[1] वचा चैव तथा गन्धर्वहस्तिका ॥२१

कृष्णा चैवाश्वगंधा च विडंगं मरिचानि च ।
सैन्धवं च समं दद्यात् विश्वभैषजमेव च ।
एभिस्तैलं पचेद्धीमान् शृंगवेरमतः परम् ॥२२

[2]कुब्जाऽन्यवामना चैव पंगुपादजटा[3] भवेत् ।
महावातेन[4]भग्नानां विषार्त्तानां[5] विसर्पिणाम् ॥२३

संकोचने तु गात्राणां वातभग्नाश्च ये नराः ।
विष्कुम्भे सन्निपाते च भृशं ग्रन्थिविनाशने ॥२४॥

वातगुल्मे च भग्नानां हृच्छूले[6] दारुणे ग्रहे ।
शमयेत्त्वक्षिशूलानि कर्णशूलान्यनेकशः ॥२५

रोगानतगलोत्थं[7] च सर्वमेतद्व्यपोहति ।
येषां शुष्कति वै कामो ये चांडेन तु विह्वला ॥२६

क्षीणप्रजाश्च[8] ये मर्त्या जरया जर्ज्जरीकृताः ।
मंदमेधान्विता[9] ये च श्रुतिर्येषां प्रणश्यति ॥२७

प्रमेहेषु च सर्वेषु अंडसर्कारिकासु च ।
अममाणेषु घोरेषु कामला-पाण्डुरोगजित् ॥२८

भुक्तं न जीर्यते येषांमंतर्दाह्यादिदारुणम्[10] ।
या च वंध्या भवेन्नारी काकवंध्या च या भवेत् ॥२९

भग्नयोनिश्च या काश्चित् गर्भं गृह्णाति या न वा ।
अपस्मारी[11] गंडमाला वातशोणितमेव[12] च ॥३०

पिडिका[13] सर्वदुष्टा तां दद्रुपामाविर्चिकाम् ।
विनिहन्ति ज्वराः सर्वे वातपित्तास्तथैव च ॥३१

---

१. घ. वीलुपर्णी । २. घ. कुब्जान्या । ३. घ. जडा । ४. घ. महावातेथ । ५. घ. चिन्तार्त्तान् । ६. घ. हनुस्थे । ७. घ. मंतर्गलोत्सं च । ८. घ क्षीणेन्द्रियाश्च । ९. घ. मंदमेधाविना । १०. घ. द्विदारुणं । १२. घ. अपष्मारं । १२. घ. वातपित्त-स्तथैव च । १३. घ. पिटिका ।

पूतिगंधमुखा ये च व्रणदुष्टार्दितास्तथा ।
गूढगर्भा[1] च या नारी यस्या स्याच्च भगन्दरम् ॥३२

ज्वरेषु चैव सर्वेषु तैलमेतद्विशेषतः ।
कामाग्निजननं 'चैतत् वर्णवीर्यकरं परम्'[2] ॥२३

[3]सिन्दूरवर्णं कमलासनस्थं[4] गजाननं सर्वसुखैकहेतुम् ।
प्रयोगरत्नावलिनाम तंत्रं 'चकार कल्याण सुकामवर्द्धनम्'[5] ॥३४

मासमेकं पिवेद्यस्तु यौवनस्थः[6] पुनर्भवेत् ।
एतत्सिद्धार्थकं तैलं नरनारीहितावहम् ॥३५

पिप्पलीलवणोपेतौ[7] 'बस्तांडौ क्षीर'[8]–सर्पिषा ।
साधितो भक्षयेद्यस्तु स गच्छेत्प्रमदाशतम् ॥३६

वस्तांडसिद्धे पयसि साधितौ[9] न सक्तित्तिलान् ।
यः खादेत्स पुमान् गच्छेत् स्त्रीणां शतमपूर्ववत् ॥३७

चूर्णं विदार्या रचितं स्वरसेनैव भावितम् ।
सर्पिः क्षौद्र–[10]युतं लीढं[11] शतं गच्छेन्नरोऽङ्गनाः[12] ॥३८

एवमामलकीचूर्णं स्वरसेनैव भावितम् ।
शर्करामधुसर्पिर्भ्यां युक्तं लीढ्वा पयः पिवेत् ॥३९

एतेनाशीतिवर्षोपि युवैव रमते सदा ।
स्वयं गुप्तेक्षुरकजं वीजचूर्णं सशर्करम् ॥४०

घृतोस्मे(ष्णे)न नरः[13] पीत्वा[14]पयसा तत्क्षयं व्रजेत् ।
उच्चटाचूर्णमप्येवं क्षीरेणोत्तरमुच्यते ॥४१

शतावर्य्युच्चटाचूर्णं पेयमेवं सुखाम्बुना ।
कर्षं मधुकचूर्णस्य घृतक्षौद्रसमन्वितम् ॥४२

पेयोनुपानं यो लिह्यान्नित्यवेगशतो[15] भवेत् ।
मूशलीकंदचूर्णं च गुडुचीसत्त्वसंयुतम् ॥४३

---

१. घ. मूढ० । २ घ. चैव बलवीर्यविवर्द्धनम् । ३. घ. ॐ नमः । ४. घ. ०स्थः । ५. घ. प्रनम्य धीरो वनिताविवर्द्धनम् । ६. घ. यौवनस्था । ७. घ. पेत । ८. घ. वस्तांडक्षीरसर्पिषा । ९. घ. साधिता । १०. घ. क्षौद्रं । ११. घ. लीढ्वा । १२. घ. नरांगनाम् । १३. घ. नरं । १४. घ. पिष्ट्वा । १५. घ. ०मित्य० ।

वानरीगोक्षुराभ्यां च शाल्मली शर्करामलैः ।
आलोड्या घृतदुग्धाभ्यां पाययेत् कामवृद्धये ॥४४

गोक्षुरकः क्षुरकं[1]शतमूली नागबलाऽतिबला....च ।
चूर्णमिदं पयसा निशि पीतं[2] यस्य गृहे प्रमादाशतमस्ति ॥४५

वाराहीकंदशृंगाटकपलयुगलं चूर्णितं किञ्चिदाज्ये,
मृष्टं कल्के दलत्वक् सुरकुसुमकणा[3] केशराणां पलं च
श्वेतां[4] सर्पिः[5] ममानां पयसि[6] सगुणे साधुपक्कं महिष्याः ।
कामोद्बो[7]-धापकार्यास्तदनु च वटका[8] कामुकैः शुक्रवृद्ध्यै ॥४६

एतां[9] सदा सेवमानो वृद्धोपि तरुणायते ।
तरुणीनां शतं याति[10] तरुणस्य च[11] का कथा ॥४७

लघुशाल्मलिमूलेन तालमूलीसुचूर्णितम् ।
सर्पिषा पयसा पीत्त्वा नरश्चटकवद् भवेत् ॥४८-

वृद्धशाल्मलिमूलस्य रसं[12]शर्करया पिबेत् ।
एतत्प्रयोगात्सप्ताहाज्जायते रेतसांबुधिः[13] ॥४९

सितवारिजकंदकृतं पयसा प्रपिबेन्नरः[14] चूर्णवरं सहसा ।
स भवेद्वनिताशतसौख्यकरः सुरते सततं तरुणेषु रतः ॥५०

वीरा-क्षीरविदारिका[15] कुरवकं श्वेताढकार्द्धार्द्धकम्,
प्रस्थं शाल्मलिमूलजातरसतो नीत्वा तथैनं[16] पचेत्,
चातुर्ज्जातफलान्विता मधुयुतः कार्यः परं[17] शुक्रलम्[18] ।
लेहोयं पलितांतको बलकरः ख्यातो वलीनाशकः[19] ॥५१

शतावरी गोक्षुरकेण दर्भं, 'शृंगाटकं चातिवलात्मगुप्ता'[20] ।
सितासमाना[21]निशि चूर्णमेषां दुग्धेन पीतं प्रकरोति पुष्ट्यम्[22] ॥५२

---

१. घ. क्षुरकः । २. घ. दिन पेयं । ३. घ. सु कुसुमकणा । ४. घ. श्वेता । ५. घ. सर्वैः । ६. घ. दशगुणे । ७. घ. कामोद्बेधा । ८. घ. ०तदनु वटका । ९. घ. एनां । १० घ. यांति । ११. घ च । १२. घ. समं । १३. घ. रेतसोधि । १४. घ. ०श्नु । १५. क. घ. विदादिरिका । १६. घ. तथा नो । १७. घ. कार्यं । १८ घ. शुक्रलो । १९. घ. बला । २०. घ. भृंगारको नाम बलातमगुप्ता । २१. घ. ०समानं । २२. घ. पुष्टि ।

विसदाफलबीजानां चूर्णं[1] पीतं निशामुखे ।
पयसा कर्षमात्रेण खं(षं)डत्वं नाशयेत् ध्रुवम् ॥५३

खसफल[2]शुंठीक्वाथः षोडशशेषः सितायुतः पीतः ।
कुरुते रतेन पुंसो रेतः[3] एवं विनाम्लेन ॥५४

आर्द्रोवरटीछत्रे[4] नव्ये कंदे सुदर्शनाखाख्यः[5] ।
साधितमतसीतैलं बिन्दुरयं नाभिलेपतो[6] धत्ते ॥५५

जातीफलार्ककरहाटलवंगशुण्ठी
कंकोल कुंकुमकणा हरिचन्दनानि ।
एतैः समानमहिफेन समेन[7] तुल्यां,
श्वेतां निधाय मधुना चटकं[8] विदध्यात् ॥५६

माषद्वयोन्मितममुं निशि भक्षयित्वा,
मिष्टं पयस्तदनु माहिषमाशु पीत्वा ।
कुर्वन्तु कामुकजना न[9] तु विंदुपातात्[10],
चेतांसि तानि चकितानि कलावतीनाम् ॥५७

कांचनस्य[11] फलमूलदलानां, पूग–[12]चूर्णसहितेन रसेन ।
लिंगलेपमसकृत्प्रहरार्द्धं, बिंदुवेगधरणाय निबद्धम् ॥५८

अहिफेनभवं[13] दुग्धं रक्तिकात्रितयोन्मितं ।
बिंदुवेगध्रुवं[14] धत्ते सितया निशि भक्षितम् ॥५९

मखविष्टा[15] पिष्टाया लिंगलेप कृतो रतावसरे ।
द्रावयति वारवनिताऽपि वारंवारं मतं[16] नियतम् ॥६०

चूर्णितैर्मधुसंयुक्तैर्महाराष्ट्रीफलद्रवैः[17] ।
लिंगलेपेन सुरते द्रवा भवति योषिता ॥६१

---

१ घ. चूर्णं । २. घ. विषदाफल । ३. घ. पुंसो रेतपति । ४. घ. आर्द्रे वरटि छत्रेन । ५. घ. ०ख्याख्यः । ६. घ. नो । ७. घ. मनेन । ८. घ. वटकं । ९. घ. कामजनका । १०. घ. पाते । ११. घ. कांचनार । १२. घ. पुंग । १३. घ. अहि–फेनं दुग्धशुद्धं । १४. घ. वेगं । १५. घ. मखविष्ठा । १६. घ. मरतं-मतरं । १७. घ. फलं छर्दैः ।

मोचरसामलकीत्वक् कामावीभिरनुनिशं शुभगा ।
स्वभगे विधाय वर्त्ति सुरते कांतं सुखीकुरुते ॥६२

प्रच्छालनं[1] भगो नित्यं[2] कृत्वामलकवल्कलैः
रेतेपि[3] कामिनी कामा वालेव कुरुते रतिम् ॥६३

इति श्रीकल्याणेन कृते बालतंत्रे पुरुषवीर्यवृद्धिकथनं नाम तृतीयः पटलः ।

## चतुर्थः पटलः

शुद्धार्त्तवां[4] दोषविमुक्तशुक्रः सुगंधलेपैः परिलिप्तगात्रः ।
प्रशस्तनक्षत्रदिने प्रहृष्टां[5] नारीमुपेयाद्दयितः[6] सुतार्थी ॥१

सेवेत वाजीकरणादि नित्यं पयः पिवेत् 'शर्करया विमिश्रम्'[7] ।
दानेन मानेन च भूसुराणां मोदं विदध्याद्विधितोपयुक्तः ॥२

दिनेषु युग्मेषु पुमान् प्रदिष्टः प्रोक्तान्यथा स्त्री तदतुल्यबुद्धिः ।
विचार्य सर्वं सुखतोऽप्रमत्तः प्रवृद्धशुक्रो दयितामुपेयात् ॥३

आहारचारचेष्टाभिर्यादृशीभिः समन्वितौ ।
स्त्रीपुंसौ समुपेयातां ततः पुत्रोऽपि तादृशः ॥४

रक्ताधिक्ये भवेन्नारी शुक्राधिक्ये भवेत्पुमान् ।
रक्तशुक्रसमं चैव भवतीह नपुंसकम् ॥५

रक्तशुक्रमकाले च भवेत्तु 'निष्फला क्रिया'[8] ।
शुक्रक्षये नपुंसत्वान्नारी गर्भं न गृह्णति ॥६

विचार्यैवं सुधीः[9] पश्चात् प्रयोगान्कारयेत् सदा ।
प्रणवं[10] कामराजं च 'देवक्याश्च सुतं वदेत्'[11] ॥७

गर्भार्थं च प्रदातव्यं मन्त्रेणानेन मंत्रितम् ।
गोविन्देति पदं ब्रूयात् वासुदेवपदं[12] ततः ॥८

---

१. घ. प्रक्षालनं । २. घ. भगे । ३. घ. रतोपि । ४. घ. शुद्धार्त्तवं ।
५. घ. प्रहृष्टं । ६. घ. मुपेच्छा । ७. घ. शर्करया च मिश्रम् । ८. घ. निफलानि च ।
९. क. सुधी । १०. घ. प्रणवः । ११. घ. देवकीसुत संवदेत् । १२. घ. वास्तुदेव ।

जगत्पतिं[1] समुच्चार्य देहि मे तनयं ततः ।
देवेशेति[2] पदं चोक्त्वा तवाहं शरणं गतः ॥६

अष्टोत्तरशतं जप्त्वा औषधं च प्रदापयेत् ।
औषधीग्रहणे मंत्राः कथ्यन्ते कृपया[3] शुभाः ॥१०

गत्वौषधिसमीपं तु मूले कृत्वा समं बुधः ।
कीलकं खादिरं[4] ग्राह्यं 'मंत्रेणानेन मंत्रितम्'[5] ॥११

नारायणायै(य)[6] स्वाहेति प्रणवादिर्नवाक्षरः[7] ।
उत्तराभिमुखो[8] भूत्वा वक्ष्यमाणेन संखनेत् ॥१२

प्रणवो भुवनेशानी येन त्वां खनते[9] ततः ।
ब्रह्मा येन तु रुद्रोथ केशवेति वदेत् क्रतः ॥१३

तेनाहं खनयिष्यामि[10] सिद्धिं देहि महौषधे ।
वक्ष्यमाणेन मंत्रेण उद्धरेदौषधीं बुधः ॥१४

सर्वार्थसिद्धिनी[11] स्वाहा प्रणवादिर्नवाक्षरः ।
वक्ष्यमाणेन मंत्रेण प्राशनं कारयेत्सुधीः ॥१५

ॐ कुमारजननीयै (नन्यै) स्वाहा मंत्रो दशाक्षरः ।
लक्ष्मणासंग्रहः कार्यः[12] 'प्रवृत्ते चोत्तरायणे'[13] ॥१६

सम्पूर्णमासपक्षे तु 'मा गृह्णीयात् महौषधीम्'[14] ।
चिह्नं तस्याः प्रवक्ष्यामि ज्ञायते ननु[15] सा जनैः ॥१७

रक्तबिंदुयुतैः पत्रैर्वर्त्तुलाकृतिभिर्युता ।
[16]परुषाकारसंयुक्तैः लक्ष्मणा सा निगद्यते ॥१८

आत्मच्छायां परित्यज्य गृह्णीयात्पुष्यके सुधीः ।
प्रणवं हृदये प्रोच्य बलवर्द्धने[17] चोच्चरेत् ॥१६

---

१. क. जगत्पति । २. घ. तदेवेपि । ३. घ. क्रमया । ४. घ. खदिरं ।
५. घ. शुभं मंत्रेण मंत्रिता । ६. घ. नारायणीय । ७. घ. ०नवायुधः । ८. घ. ०मुखे ।
६. घ. खनने । १०. घ. सतयिष्यामि । ११. घ. ०सध्वीनी । १२. घ. कार्यं ।
१३. घ. प्रकारेशे तदा गणे । १४. घ. गृह्णीयाच्च महौषधिम् । १५. घ. येन ।
१६. घ. पुरुषाकार । १७. घ. ०वर्द्धनि ।

शुक्रवर्द्धनी[1] पुत्रेति जनति[यित्री][2] वह्निवल्लभा।
विंशत्पर्णेन विधिना नस्ये[3] पानं प्रदापयेत् ॥२०

नाड्यां हि[4] दक्षिणायां तु वायौ वहति दापयेत्।
ऋतुस्नातानंतरं तु[5] वंध्यापि पुत्रमाप्नुयात् ॥२१

मृतवत्सा तु या नारी दुर्भगा ऋतुवर्जिता[6] ।
या सूते कन्यकां[7] वंध्या स्नानमासां[8] विधीयते ।२२

अष्टम्यां वा चतुर्दश्यामुपवासपरायणः ।
ऋतौ शुद्धे चतुर्थेऽह्नि प्राप्ते सूर्यदिनेऽथवा[9] ॥२३

नद्याः सुसंगमे कुर्यान्[10] महानद्यां विशेषतः ॥२४
शिवालयेऽथवा गोष्ठे 'विविक्ते वा गृहांगणे'[11] ।

आहिताग्निं द्विजं शान्तं धर्मज्ञं सत्यशीलिनम् ॥२५

स्नानार्थं[12] तीर्थभेदेन[13] निपुणं रौद्रकर्मणि ।

ततस्तु मण्डपं कुर्यात् चतुरस्रमुदकप्रभम् ॥२६

[वि]विधं[14] चंदनमालं च गोमयेनानु[15]- लेपितम्।
तन्मध्ये श्वेतरजसा संपूर्णं पद्ममालिखेत् ॥२७

मध्ये यस्य महादेवं स्थापयेत्कर्णिकोपरि[16] ।
दद्याद्दलेषु 'नंद्यादी चतुष्कं विधिपूर्वतः'[17] ॥२८

इंद्रादिलोकपालांश्च दलेष्वन्येषु विन्यसेत्।
देवीं विनायकं चैव[18] स्थापयेत्तत्र पार्थिवम् ॥२९

दद्यादर्घं[19] गंधपुष्पं धूपदीपं गुडौदनम्।
भिन्नानां[20] विधिवद्द्यात्फलानि[21] विविधानि च ॥३०

---

१. क. वर्द्धनि। २. घ. जनंति। ३. क. नसि। ४. घ. तु। ५. घ. ऋतुस्मान्तरं तु। ६. घ. रुक्वर्जिता। ७. घ. कन्यका। ८. घ. ०मासं। ९. घ. सूर्यं। १० घ. नद्यास्तु संगमे तुर्यात्। ११. घ. विधु वा ग्रहणांगणे। १२ घ. स्नानार्थे। १३ घ. मर्थभेदेन। १४. क. वधि। १५. क. ०तासु। १६. घ फर्णं०। १७. घ. नद्यां हीनचतुर्थे विधिपूर्वकम्। १८. घ. देव। १९ घ. दद्यादगंध। २०. घ भिन्नानि। २१ घ. विविधा दद्यात्०।

चतुःकोणेषु शृङ्गाणां मखच्छदविभूषितम्[1] ।
अग्निकार्ये[2] श्रुते कुण्डे पुष्पपात्रैस्त्वलंकृते[3] ॥३१

लवणं · पिषा युक्तं[4] घृतेन मधुना सह
मनस्तोकेन जुहुयात् कृते होमे नवग्रहे[5] ॥३२

द्वितीयस्यात्मकार्यस्य[6] कर्त्ता च ब्राह्मणो[7] भवेत् ।
'रुद्रजाप्यकृता कार्यं'[8] सितचंदनचर्चितम् ॥३३

सितवस्त्रपरीधानं सितमालाविभूषितम् ।
शोभयेत्कंकणैर्बध्या[9] कर्णवेष्टयंगुलीयकैः[10] ॥३४

मंडपस्य 'समीपस्थो जपेद्रुद्रं'[11] विमत्सरः ।
यावदेकादशगतः(शतः) पुनरेव 'जपेच्च तान्'[12] ॥३५

देवमंगलयत्कार्यं द्वितीयं मंडलं शुभम्[13] ।
तस्य मध्ये तु नारीं वा[14] श्वेतपुष्पैरलंकृताम् ॥३६

श्वेतवस्त्रपरीधानां श्वेतगंधानु[15]-लेपिताम्[16] ।
सुखासनोपविष्टां[17] य आचार्यो रुद्रजापकः[18] ॥३७

अभिषिंचेत्ततश्चेतामर्कपत्रशुचांबुना[19] ।
चतुःषष्टिरिचेनैव[20] रुद्रेणैकादशेन तु[21] ॥३८

शतानि सप्तपर्णानां चतुर्भिरधिकानि तु[22] ।
वर्णानामिति ऋचांता : तासां चतुःषष्टिसंख्यानामेकादशशतत्वं पठितानामियं[23]संख्या
अच्छिद्रेति[24] मंत्रेण स्नानार्थं विनिवेशयेत्[25].
अश्वस्थानात् गजस्थानात् वल्मीकात्संगमात् ह्रदा त् ॥३९

---

१. घ. मुपस्थं दलभूषणम् । २. घ. ०कार्ये । ३. घ. ०पात्रेण लंक्रिते ।
४ क. युक्त, ग. युक्ता । ५. ग. ०ग्रहः । ६. घ. द्वितीयस्यात्मिकार्यस्थ । ७. घ. ब्रह्मणो ।
८. घ. रुद्रजम्यं तदाकार्यं, ग. रुद्रजप्यकृदा कार्यं । ९. ग. शोभयेत्कंकणैं. वध्वौ । १०. क. कवेष्टयंगुलैयकैः, ग.० गुलियकै । ११. घ. समीपस्याजये० । १२. ग. जपेयनात् ।
१३. घ. सुतम् । १४. ग. नारीणां । १५. ग. घ. श्वेतगंधार्कलिपिता । १६. घ. लेपिता ।
१७. क. सुचासनो । १८. क. रुद्रजामिव, घ. रुद्रजाप चः । १९. ग. ०अर्कपुत्रप्रचांबुना ।
२०. ग. तैव । २१. ग. ननु । २२. ग. न तु । २३. घ.० मयं । २४. घ. अधिद्रेणेति ।
घ. २५. निनिवेशयत् ।

वेश्यांगणाद्राजगृहात् गोष्ठादानीय वै मृदम् ।
सर्वौषधी[1] रोचना च नदीतीर्थोदकानि च ।।४०

एतत्संक्षिप्य[2] कलशे शिवसंज्ञे सुपूजिते[3] ।
आपादतलकेशान्तं कुक्षिदेशे विशेषतः[4] ।।४१

सर्वाङ्गं लेपयेद् भक्त्या सुशीला काचिदंगनाम् ।
रुद्राभिजप्तेन ततः स्नापयेत्कलशेन ताम् ।।४२

तोयपूर्णाष्टकलशैरश्वत्थदलपूरितैः ।
सर्वतो दिक्स्थैः पश्चात्स्थापयेत्कलशान् क्षितौ ।।४३

स्नात्वैवं च स्थापकाय[5] दद्याद्राजनकाञ्चनम् ।
होतुरेवात्र निर्दिष्टाक्षां दक्षिणां गां पयस्विनीम् ।।४४

ब्राह्मणानामथोऽन्येषां स्वशक्त्या साधु पूजनम्[6] ।
गोवस्त्रं[7] कांचनादीनि दत्त्वा सर्वान्क्षमापयेत् ।।४५

कृतेनानेन स्नानेन नरो वा नार्यंकापि[8] वा ।
सुभगा कांतिसंयुक्ता वहुपुत्रा च जायते ।।४६

सर्वेष्वपि हि मासेषु ब्राह्मणानुमते शुभम् ।
तस्मादवश्यं[9] कर्त्तव्यं पुत्रान्स्त्री सुखमृच्छति ।।४७

या स्नानमाचरति रुद्रमिति प्रसिद्धं,
श्रद्धान्विता द्विजवरानुमते नताङ्गी ।
दोषान्निहत्य सकलान् स्वशरीरभाजो
भर्त्तुः प्रिया भवति 'सा सुरते सवत्सा'[10] ।।४८

**इति श्रीकल्याणेन कृते बालतन्त्रे गर्भाधानकालरुद्रस्नानकथनं नाम चतुर्थः पटलः।।**

---

१. घ. सर्वौषधि । २. ग. घ. संधि विनिक्षिप्य । ३. घ. स्तु पूजिते । ४. ग. घ. विशेषितः । ५. ग. स्नापकीय । ६. घ. पूजयेत् । ७. ग. णोवस्त्र । ८. ख. नायिकापि ९. ख. ० दैवश्यं । १०. घ. पुत्रसुखान्विता च ।

## पञ्चमः पटलः

गर्भस्थितस्य बालस्य रक्षार्थं कथ्यते बलिः ।
औषधानि विचित्राणि कथ्यन्ते[1] मन्त्रजापकः ॥१

गर्भिणीगर्भरक्षार्थं मासे तु[2] प्रथमे बलिः ।
प्रजापतिं समुद्दिश्य देयो मंत्रेण मंत्रिणा ॥२

श्वेतवस्त्रं पायसं च गवां क्षीरं[3] तथा घृतम् ।
श्वेतवस्त्रं चन्दनं च सरत्नं चांगुलीयकम् ॥३

पूर्णकुम्भो हेमयुक्तो धूपदीपावयं[4] बलिः ।
स्थाने गवां दोहनस्य निक्षिप्तव्यः प्रशान्तये ॥४

तत्र मन्त्रः—

[5]एह्येहि भगवन् ब्रह्मन् प्रजाकर्त्तः[6] प्रजापते ।
पिष्ट्वा[7] क्षीरेण संपेयमौषधं समुदाहृते[8] ॥५

यदि चेत्प्रथमे मासि गर्भे भवति वेदना ।
नीलोत्पलं सनालं च श्रृंगाटककसेरुकम् ॥६

शीततोयेन संपिष्ट्वा क्षीरेणालोड्य तत्पिवेत् ।
एवं न पतते गर्भः[9] शूलं चैव विनश्यति ॥७

मंजिष्ठं चन्दनं कुष्ठं तगरं समभागकम् ।
शीतोदकेन संपिष्य क्षीरेणालोड्य तत्पिवेत् ॥८

॥ इति प्रथममास गर्भिणीरक्षा ॥

गर्भिणीगर्भरक्षार्थं द्वितीये मासि वै बलिः ।
समुद्दिश्याश्विनौ चैव[10] देयो[11] मंत्रेण मंत्रिणा ॥९

दध्यन्नं[12] पायसं लाजा पिन्याककुसुमानि[13] च ।
गन्धश्च[14] धूपदीपैश्च वस्त्रं पूर्णो[15] घटस्तथा ॥१०

---

१. ग. वाच्यते । २. ख. षु । ३. ख. गव्यं । ४. ख. चयं । ५. घ. हरेरिराह्येहि । घ. ६. प्रजाकृताः । ७. घ. घृष्ट्वा । ८. घ. समुदाहृतं । ९. घ. गर्भं । १० घ. चाभि । ११. घ. देवौ । १२. घ. दद्यान्नं । १३. घ. कपित्या० । १४. घ. गन्धैश्च । १५. घ. पूर्णं ।

हेम्ना युतोऽथ शालायाः[१] समीपे निक्षिपेद्बलिम् ।
[२]गोदोहस्थानके न्यस्य मंत्रमेतं पठेत्सुधीः ॥११

मंत्रः—

भगवन्तौ प्रभवन्तौ[३] प्रगृहीतं बलिं त्विमम् ।
विश्वरूपौ[४] देवभिषजौ रक्षेतां[५] गर्भिणीं युवाम् ॥१२

यदि च द्वितीये मासे[६] गर्भे[७] भवति वेदना ।
तगरं कुंकुमं विल्वं कर्पूरेण समन्वितम् ॥१३

अजाक्षीरेण संपिष्ट्वा क्षीरेणालोड्य तत्पिवेत् ।
एवं न पतते गर्भः शूलं चैव विनश्यति ॥१४

शालूकनीलोत्पलके कसेरुश्रृंगवेरकम् ।
स[८] संपिष्ट्वोदकैनैव क्षीरेण सहसा पिवेत् ॥१५

श्रृंगाटकं[९] कसेरुं च जीरकं विल्वपत्रकम् ।
खर्जूरं शीततोयेन पिष्ट्वा[१०] क्षीरेण संपिवेत् ॥१६

॥ इति द्वितीयमासे गर्भिणीरक्षा ॥

गर्भिणीगर्भरक्षार्थे[११] बलिर्मासि तृतीयके
रुद्रानेकादशोद्दिश्य देयो मंत्रेण मंत्रिणा ॥१७

घृतमन्नं च लाजाश्च ध्वजां श्वेतां च[१२] चन्दनम्
श्वेतपुष्पाणि वस्त्रं[१३] च श्वेतं धूपं[१४] प्रदापयेत् ॥१८

श्वेतपंकजयुक्तश्च पूर्णकुंभः सकांचनः[१५] ।
इत्येतत्प्रथमस्थाने ईशान्यां दिशि निक्षिपेत् ॥१९

अथ मंत्र :—

महादेवः शिवो रुद्रः शङ्करो [१६]नीललोहितः ।
ईशानो विजयो भीमो देवदेवो जयोद्भवः[१७] ॥२०

---

१. घ. सिलाया । २. घ. गेहोद्दत् । ३. घ. प्रभावन्तौ । ४. घ. सुरूपौ । ५. क. रिरक्षेतां । ६. घ. मासि । ७. घ. गर्भं । ८. घ. समं । ९. क. श्रृंगात्रक । १०. घ. अजा । ११. घ. रक्षार्थं । १२. घ. श्वेताथ । १३. घ. वस्त्रां । १४. घ. धूप । १५. घ. कांचने । १६. घ. निल० । १७. घ. विजद्भुवः ।

कपालीशश्च कथ्यंते तथैकादशमूर्त्तयः ।
रुद्रा एकादश प्रोक्ताः प्रगृह्णीत बलिं त्विमम्[1] ॥२१

युष्माकं तेजसा[2] वृद्धया नित्यं रक्षति गर्भिणीम् ।
यूयं मंत्रैकबुद्धया हि नित्यं रक्षति गर्भिणीम् ॥२२

पद्मकं चन्दनोशीरं तगरं समभागकम् ।
शीततोयेन संपिष्ट्वा अजाक्षीरेण पाययेत्॥२३[3]

॥ इति तृतीये मासे गर्भरक्षा ॥

गर्भिणीगर्भरक्षार्थं बलिर्मासि[4] चतुर्थके
उद्दिश्य द्वादशादित्यान् ऐशान्यां दिशि यत्नतः ॥२४

आरक्तान्नं गुडान्नं च रक्तगंधध्वजौ तथा
रक्तपुष्पैर्धूपदीपैः रक्तवस्त्रं सकांचनम्[5] ॥२५

'कलशं सलिलापूर्णं[6]' क्षिपेच्चैव जलाशये ।
वक्ष्यमाणेन मंत्रेण मंत्रं हेतिसमन्वितम् ॥२६

मंत्रः—

यमो विवस्वांस्त्वष्टावस्वृ[7] (वसवः) सविता भृगः ।
विष्णुस्तथा मधुर्मित्रः खगः सूर्योऽथ तापनः ॥२७

आदित्या द्वादश प्रोक्ता प्रगृह्णन्तु बलिं त्विमम्
युष्माकं तेजसां वृद्धया नित्यं रक्षतु[8] गर्भिणीम् ॥२८

शृगाटकं[9] चेलापत्रं[10] द्राक्षा च दाडिमोद्भवम्[11]
'बीजं च कंदलीमूलं तथा वै तालपद्मकम्'[12] ॥२९
शीततोयेन संपिष्य वस्तिक्षीरेण संपिबेत् ।
एव न पतते गर्भः शूलं चैव विनश्यति ॥३०

॥ इति चतुर्थे मासे [गर्भरक्षा] ॥

---

१. घ. हिमं । २. घ. तेजसां । ३. घ. 'उशीरं पद्मकं मुस्ता चन्दनं पद्मनालकम् । शीततोयेन संपिष्य क्षीरेणालोड्य पाययेत् ॥' ४. घ. बलिं मासे । ५. घ. सकांचनं । ६. घ. कलशः सलिलापूर्णः । ७. घ. वैवस्वानस्त्वष्टावस्तुश्च । ८. घ. रक्षति । ९ घ. शृंगाटं । १०. ग. केवलं पत्रं । ११. घ. द्राक्षादाडिमोद्भवः । १२. ग. बीजं कदलिकन्दं तु शीततोयेन पेषयेत् । अजाक्षीरेण संलोड्य पिबेन्नारी सुखासये । उशीरं कदलीमूलं तथा वै पद्मनालकम् ।

गर्भिणीगर्भरक्षार्थं पंचमे मासि वै बलिः[1] ।
विनायकं[2] समुद्दिश्य देयं[3] संततचेतसा[4] ॥३१
विनायकं गोमयेन कुर्यात्[5] पिष्टेन वा पुनः ।
चतुरस्रे शुभे लिप्ते स्थापयेत्तं गणाधिपम् ॥३२
अभ्यर्च्य गंधपुष्पाद्यैर्बलिं तत्पुरतः क्षिपेत् ।
अन्नं पक्वं तथाऽपक्वं मांसं पक्वमपक्वकम् ॥३३
पायसं मधुकं द्राक्षागुडक्षीरफलानिच ।
कदलोफलपिण्डालुमधूकानि च मूलकम् ॥३४
परूष नालिकेरं च कंदमूलानि सर्षपाः ।
सर्वधान्यानि लाजाश्च सूपश्च[6] तिलपिष्टकम् ॥३५
इक्षुवत्स्तरसश्चैव[7] मध्वा पैष्टी[8] गुडोद्भवा ।
यस्य यानि निषिद्धानि तानि त्यज्य बलिं हरेत् ॥३६
मत्स्यास्तत्र समानेया सहकारजले[9] क्षिपेत् ।
अथवान्यस्य वृक्षस्य[10] मूलमंत्रेण[11] मत्रितः[12] ॥३७

मन्त्रः—

एकदन्तोऽम्बिकापुत्रः[13] त्रिनेत्रो गणनायकः ।
रक्ताम्बरधरः श्रीमान् रक्तमालानुलेपनः[14] ॥३८
विनायको गणाध्यक्षः शिवपुत्रो महाबलः ।
प्रगृह्णीष्व बलिं चेमां सापत्यां रक्ष गर्भिणीम् ॥३९
बलिप्रदायकं मर्त्यमायुषा चापि वर्द्धय ।
अलक्ष्मीं चामयं पापं ग्रहविघ्नविनाशनम् ॥४०

---

१. घ. बलिम् । २. घ. विनायक । ३. घ. देयः । ४. घ. सम्पन्नचेतसः । ५. घ. नार्या । ६. घ. पूपश्च । ७. क. इषुवत्स्तरसचैव । ८. घ. माध्वि । ९ घ. ० रसे । १० घ. वृषस्य । ११. घ. मूले मन्त्रेण । १२ घ. मन्त्रवित् । १३. क. ०विनापुत्र । १४. घ. ० रक्तमाल्यानु० ।

वक्रतुण्ड महावीर्य महाभाग महाबल ।
शिरसा त्वभिवन्देऽहं सापत्यां रक्ष गर्भिणीम् ॥४१

अथ चेत्पंचमे मासि गर्भे भवति वेदना ।
नीलोत्पलं च किंजल्कं[1] पद्मकेशरसंयुतम् ॥४२

अजाक्षीरेण संपिष्ट्वा क्षीरेणालोड्य तत्पिबेत् ।
एवं न पतते गर्भं शूलं चैव विनश्यति ॥४३

नीलोत्पलस्य[2] मूलं तु काकोलिं च[3] सनालकम् ।
शीततोयेन संपिष्य क्षीरेणालोड्य तत्पिबेत् ॥४४

पुनर्नवासर्षपाश्च बदरीबीजमाहरेत् ।
छागीदुग्धं[5] समं पिष्य अजाक्षीरेण सम्पिबेत् ॥४५

॥ इति पंचमे मासि गर्भरक्षा ॥

गर्भिणीगर्भरक्षार्थं षष्ठे मासि तथा बलिः ।
वसूनष्टौ[6] समुद्दिश्य देयो मंत्रेण मन्त्रिणा ॥४६

घृतान्नं च हरिद्रान्नं खेलालायाश्च[7] पायसम् ।
पीतवर्णप्रसूनानि तथा नीलोत्पलानि च ॥४७

सकांचनं पूर्णकुम्भं सद्यो नद्यास्तटे क्षिपेत् ।
वक्ष्यमाणेन मंत्रेण सावधानो भवेत्सुधी. ॥४८

मन्त्रः—

प्रवासः पावकः[8] सोमः प्रत्यूषः पावकोऽनलः ।
धरो ध्रुव इति ह्येते वसवोऽष्टौ प्रकीर्त्तिताः । ॥४९

'अवटस्तु पुम्बलिं चेम'[10] नित्यं रक्षंतु गर्भिणीम् ।
[11]वृद्धैलामृद्विकातिवृदुत्पलं केशरं पिबेत् ॥५०

---

१ घ. मृनालं च । २ घ. नीलोत्पलं । ३. घ. कांकोली । ४. घ. सवालुकम् । ५. घ. छाग० । ६. घ. वसुनष्टं । ७. घ. खंडो लाजाश्च । ८. क. पावव: । ९. घ. वसवष्टौ । १०. घ. प्रगृह्णन्तु बलिं चेमं । ११. घ. बला च मृद्विका० ।

पिप्पलीबीजपूरं[१] तु उत्पलं च[२] सकेशरम् ।
शीततोयेन संपिष्ट्वा क्षीरेणालोड्य तत्पिबेत् ॥५१

निम्बपत्र[३] च हिंगु च महिषीशृङ्गसर्षपाः ।
कपिवृष्टिं धूपकं च[४] दद्यात् पश्चान्महौषधम् ॥५२

गजपिप्पलिकं चैव नागरं बीजमेव च ।
भारंगी जीरके द्वे च पद्माक्षं[५] रक्तचन्दनम् ॥५३

वचां छागलदुग्धेन पिबेन्नारी सुखाप्तये ।।
एवं न पतते गर्भं शूलं चैव विनश्यति ॥५४

॥ इति षष्ठे मासे गर्भरक्षा ॥

गर्भिणीगर्भरक्षार्थं सप्तमे मासि वै बलिः ।
स्कंधो रेतो न दातव्यं[६] पूर्वोक्तविधिनैव हि ॥५५

मन्त्रः—

स्कंद षण्मुख देवेश शिवप्रीतिविवर्द्धनात् ।
प्रगृह्णीष्व[७] बलिं चेमं सापत्यां रक्ष गर्भिणीम् ॥५६
'कपित्थकं प्रवालं च लाजाश्चैव शर्करान्विता':[८] ।
पथ्योदकेन[९] दातव्यं गर्भिणीसुखहेतवे[१०] ॥५७

कपित्थं शालुकं लाजा सरक्ता तोयपेषिता[११] ।
क्षीरेण सह दातव्यं गर्भिणीसुखहेतवे ॥५८

अश्वत्थवटमूलेन भृंगराजस्तथैव च ।
सूर्यभक्त्या पुनर्नव्या रक्तचन्दनमेव च ॥५९

शीततोयेन[१२] संपिष्य छागदुग्धेन सम्पिबेत् ।
एवं[१३] न पतते गर्भः[१४] तस्याः शूलं विनश्यति ॥६०

॥ इति सप्तमे मासि गर्भरक्षा ॥

---

१. घ. ०बीजमूलं २. घ. तु । ३ क. लिवपुत्रं । ४. तु । ५. घ. पद्मकं । ६. घ. स्कंधाय च । ७. प्रगृहं । ८. घ. कपित्थकप्रियं लाजाश्चक्रा दलसमन्विताः । ९. घ. पयोदकेन । १०. घ. गर्भासुखसहेतवे । ११. घ. पेष्टिता । १२. घ. अजादुग्धेन । १३. पुत्रं । १४. घ. गर्भं ।

गर्भिणीगर्भरक्षार्थं बलिर्मासेऽपि[1] चाष्टमे
दुर्गामुद्दिश्य दातव्य.[2] सुखं भवति नान्यथा ॥६१

पायसं शर्करा लाजास्तृणधान्योदने[3] घृतम्
अपूपा : कृशराश्चैव माहिषं दधि मूलकम् ॥६२

माषा निष्पावकः कन्दः श्यामानि कुसुमानि च ।
नीलोत्पलानि च तथा पूर्णकुम्भः सकांचनः ॥६३

बलिं क्षिपेन्नदीतीरे मंत्रेणानेन संयतः[4]
पवने वा क्षिपेत् मंत्री सुखं भवति नान्यथा ॥६४

मन्त्रः—

कात्यायनी महादेवी ज्येष्ठे[5] निद्ये निशाप्रिये ।
दुर्गादेवी महाकाली सिंहशार्दूलवाहिनी[6] ॥६५

धनुःखड्गधरे देवि दुष्टदैत्यविनाशिनि[7]
नदीशैलप्रिये देवी कुमारी सुभगे शिवे ॥६६

अष्टहस्ते चतुर्वक्त्रे पिंगले शुभनासिके ।
प्रगृह्णीष्व बलिं चेमं सापत्यां रक्ष गर्भिणीम् ॥६७

पद्मक हस्तपिप्पल्य उत्पल धान्यकं तथा ।
शीततोयेन संपिष्टा क्षीरेणालोड्य तत्पिवेत् ॥६८

पुनर्नवा शृंगाटकं विल्वपत्रं कसेरुकम्
अर्जुनफल पद्माक्षं रक्तचन्दनमेव च ॥६९

छागदुग्धसमं पेयं दिनानि सप्तकं तथा
एवं न पतते गर्भ शूलं चैव विनश्यति ॥७०

॥ इत्यष्टमे मासि गर्भरक्षा ॥

गर्भिणीगर्भरक्षार्थं मासेऽपि नवमे बलिः
देवमातर उद्दिश्य सुखं भवति नान्यथा ॥७१

---

१. घ. बलि मासेपि चाष्टमे । २. घ. दातव्यं । ३. घ. धान्योदनो । ४. घ. संयुतः । ५. क. ज्ये । ६. घ. वाहने । ७. घ. ०विनाशनं ।

दध्यन्नं दधि मुद्गान्नं लाजाश्च कृशरास्तथा ।
श्वेतपंकजगंधौ च श्वेतानि कुसुमानि च ॥७२॥
धूपो वस्त्रं हिरण्येन फलपूर्णघट[1]स्तथा ।
वक्ष्यमाणेन मंत्रेण बलिर्देयः[2] सुखाप्तये ॥७३॥

मंत्रः —

प्रगृह्णीत वलिं चेमं पूयं देवाश्च मातरः[3] ।
यूयं रक्षन्तु[4] संतुष्टाः सापत्यां रक्ष गर्भिणीम् ॥७४॥
एरण्डमूलं काकोली पलाशबीजकं तथा[5] ।
पिष्ट्वा जलेन संपेयः जीर्णान्नं भक्षयेत्सुधा[6] ॥७५॥
पलाशबीजं काकोली चित्रमूलेन संयुतम्[7] ।
उशीरमुदके पिष्ट्वा जीर्णान्नं चैव भोजयेत् ॥७६॥
नागरं ब्रह्मपत्रं च एला चैव विडंगकम् ।
जीरकं गजपिप्पल्या छागदुग्धसमं पिवेत्[8] ॥७७॥

॥ इति नवमे मासि गर्भरक्षा ॥

गर्भिणीगर्भरक्षार्थं मासेथ दशमे बलिः[9] ।
उद्दिश्य निर्ऋतिं[10] देवीं देयो मंत्रेण मंत्रिणा ॥७८॥
पक्वान्नं[11] कृशरा लाजाः पक्वापक्वाश्च मत्सकाः ।
पक्वापक्वं च पललं सुरा चेक्षुरसस्तथा ॥७९॥
कृष्णा वस्त्रं कृष्णगंधं कृष्णानि कुसुमानिच ।
धूपदीपौ हिरण्येन युक्तः पूर्णघटस्तथा ॥८०॥
निक्षिपेद्दक्षिणस्यां वै निशि नीलोत्पलावृतः ।
मंत्रः — पितृदे पितृज्येष्ठे महादेवि महाबले ॥८१॥

---

१. घ. घटे । २. घ. ०र्देये । ३. घ. मातरं । ४. क. रंक्षतु । ५. घ. पालासंविजकं तथा । ६. घ. सुखी । ७. घ. चित्रकमूलसंयुतं । ८. घ. दुग्धं । ९. घ. च । १०. घ. नैऋति । ११. घ. पकान्न ।

प्रेतासने[1] निशावाते[2] नैऋते शोणितप्रिये ।
प्रगृह्णीष्व बलिं चेमं सापत्यां रक्ष गर्भिणीम् ॥८२

शर्करा चोत्पलं चैव मधुकं मुद्गमेव च ।
शीततोयेन पिष्ट्वा तु क्षीरेणालोड्य तत्पिबेत् ॥८३

मधुकं पद्मकं चैव उत्पलं च सनालकम् ।
शीततोयेन संपिष्टा[3] क्षीरेणालोड्य तत्पिबेत् ॥८४

नागरं वचशुंठी च तगरं कुंकुमं तथा ।
गोरोचना[4] च गोरम्भा अजाक्षीरेण पाययेत् ॥८५

॥ इति दशमे मासि गर्भरक्षा ॥

गर्भिणीगर्भरक्षार्थं मासे[5] चैकादशे बलिः ।
वासुदेवं समुद्दिश्य 'देयश्चायं विधिः स्मृतः'[6] ॥८६

पायसापूपमिष्टं च[7] गुंजा लाजाश्च सक्तवः ।
श्यामध्वजा श्यामगंधा श्यामानि कुसुमानि च ॥८७

धूपदीपैः[8] पूर्णकुंभः नीलोत्पलसकांचनः ।
अश्वत्थस्य मूले वा[9] वासुदेवालये तथा ॥८८

निक्षिपेत्प्रयतो भूत्वा तत्राशु[10] मंत्रमुच्चरेत् ॥८९

पाञ्चजन्यप्रभाव्यक्तः[11] कौस्तुभोद्योतभास्करः ।
प्रगृण्हीष्व बलिं चेमं सापत्यां रक्ष गर्भिणीम् ॥९०

पद्मोत्पलं च मधुकं नालकेनापि[12] संयुतम् ।
शीततोयेन पिष्ट्वा तु क्षीरेणालोड्य तत्पिबेत् ॥९१

कर्कटश्रृंगी[13] त्रिफला त्रिकटुश्च पुनर्नवा ।
नागरं भृंगराजं वा[14] अजादुग्धसमं पिबेत् ॥९२

---

१. क. प्रेतासुखे । २. घ. दिशावासे । ३. घ. संपिष्य । ४. क. गोरूचना । ५. घ. मासं । ६. घ. देयो बलि विधानतः । ७. घ. पयसं पूपपिष्टं च । ८. घ. ०दीपौ । ९ घ. तु । १०. घ. तत्रामुं । ११. क. ०प्रताव्यक्तः । १२. घ. नालिकेनापि । १३. घ. कर्कटी । १४. घ. नागरं भृंगरारंभा ।

मंजिष्ठं चन्दनोशीरं तगरं समभागकम् ।
शृंगाटकं कसेरुञ्च[1] अजादुग्धेन संपिबेत् ॥९३

॥ इति एकादशे मासि गर्भरक्षा ॥

गर्भिणीगर्भरक्षार्थं मासे वै द्वादशे वलिम् ।
एकादशोक्तविधिना देयो मंत्रेण मंत्रिणा ॥९४
पद्मशृंगाटकं चैव उत्पलं च सनालकम् ।
शीततोयेन पिष्ट्वा तु क्षीरेणालोड्य तत्पिवेत् ॥९५

॥ इति द्वादशे मासि गर्भरक्षा ॥

॥ इति श्रीकल्याणेन कृते बालतंत्रे गर्भिणीगर्भरक्षाकथनं नाम पंचमः पटलः ॥

## षष्ठः पटलः

अतः परं[2] प्रवक्ष्यामि सुखप्रसवसिद्धये ।
स्त्रीणां सुखाय कर्त्तव्या उपाया अतिगोपिताः ॥१
करंकीभूतगोमूर्द्धा सूतिकाभवनोपरि ।
तत्कालनिहितं भा(ना)र्य्याः सुखप्रसवकारकम् ॥२
पत्रं करंजवीजानि अजाक्षीरेण पाचयेत् ।
तैलेन सह संयोज्य योनिलेपात्प्रशान्तये[3] ॥३

लेपनमंत्रः—

हिमवदुत्तरे पार्श्वे[4] शवरी नाम यक्षिणी ।
तस्या नूपुरशब्देन विशल्या[5] भवतु[6] गर्भिणी स्वाहा ॥४
एरण्डस्य वने काको गंगातीरमुपस्थितः ।
द्रुतः[7] पिवति पानीयं विशल्या भवतु गुर्विणी ॥५
अनेन मंत्रेण जलं तैलं च मंत्रितं कष्टी चछुटे ।
तत्काले कंटिकामूलमुत्तरस्यां दिशि स्थितम् ॥६

---

१. घ. गलो निंव । २. घ. तत्परं । ३. घ. योनिं लिंपेत्प्रसूतये । ४. घ. हिमवंतः उत्तरे पार्श्वे । ५. क. विशाल्या । ६. घ. भव । ७. घ. प्रातः ।

उत्पाट्य चैव हस्तेन जलेन सह पेषयेत् ।
योनौ प्रलेपयेन्नारी सुखं सूते न संशयः ॥७

मूल धत्तूरकस्यैव गृहीत्वा सूर्यसन्मुखम्[1] ।
धत्तो शिरसि या नारी सुखं सूते न संशयः ॥८

पश्चिमाभिमुखो मंत्री गुंजामूलं समुद्धरेत् ।
कटौ बद्ध्वा सुखं सूते कामिनी नात्र संशयः ॥९

अपामार्गस्य मूलं तु तत्कालोत्पाटयेत्सुधीः ।
पूर्वाभिमुखः[2] 'पश्चादुदरेऽपि प्रलेपयेत्'[3] ॥१०

योनौ सुखं प्रसूते च[4] सा नारी रहितवेदना ।
सर्पकंचुकमादाय भस्म कृत्वा विधानवित् ॥११

मधुना सह संयोज्य[5] अंजनेन प्रसूयते ।
श्वेतःयाः शरपुंखाया मूलं गृह्य विधानवित् ॥१२

कटौ बद्ध्वा सुखं सूते नारी नात्र विलंबितः[6] ।
गुग्गुलु[7] सर्प्पनिर्मोकं चूर्ण्यं[8] धूपं प्रदापयेत् ॥१३
योनौ सा सुषुवे नारी वेदनार्रहिता सती ।
इन्द्रवारुणिकामूलं[9] निक्षिपेद्योनिमध्यतः[10] ॥१४
तेन सा सुषुवे नारी शीघ्रं चैव न संशयः ।
मूलं चैव समाहृत्य कलिहार्या प्रयत्नतः ॥१५
संपिष्य योनिं संलिप्य सुखं सूते तु गर्भिणी ।
पुष्पार्कमूलमाहृत्य कनकस्य विधानतः ॥१६
कटौ वद्ध्वा सुखं सूते गर्भिणी नात्र संशयः ।
सेफालीपत्रकं मूलं निर्गुण्डीपत्रकं तु वा[11] ॥१७
जलेन सह संपिष्य[12] पिबेत्प्रसवसिद्धये
वृषस्य मूलं हिमतोयपिष्टं रसोऽथवा पर्पटपत्रजातः ।
नाभेरधो लेपनतोऽङ्गनानां सुखेन गर्भप्रसवं[13] करोति ॥१८

---

१. घ. गृहीत्वार्थं च सन्मुखं । २. घ. संमुखः । ३. पश्चाद् द्वन्वकेपिस्य लेपयेत् । ४. घ. सा । ५. घ. संपिष्ट्वा । ६. घ. विलंबित । ७. घ. गुग्गुलं । ८. घ. चूर्णं । ९. क. मूल । १०. घ. निक्षिपे योनि० । ११. घ. त्वचि । १२. घ. संपिष्ट्वा । १३ घ. ०गर्भं ।

लांगल्याः परिलेपः कांजिकयोगेन काकमाच्या वा ।
नाभौ[1] सहसा कुरुते[2] गर्भप्रसवं[3] न संदेहः ॥१९

तैलेन पिष्ट्वारुबुकस्य कृष्णा बचाऽथ लिप्ता खलु नाभिदेशे ।
सुखप्रसूतिं कुरुतेंगनानां निःपीड़िताना[4] बहुभिः प्रमादैः ॥२०

मयूरमूलासनशिग्रुपाठा व्याघ्रीवलालांगलिकासमेता[5] ।
पिष्ट्वारनालेन विलिप्य नाभौ सुखेन नार्य्याः[6] प्रसवं करोति ॥२१

शालिपर्ण्याभवं मूलं पिष्टं तंदुलवारिणा ।
नाभिवस्तिगलालेपात्प्रसूते प्रमदासुखम् ॥२२

सर्पकंचुकनृकेशसर्षपस्तिक्ततुम्बिकृतबंधनान्वितैः[7] ।
[8]धूपनात्कटुतैलसंयुतैस्तत्क्षणेन युवतिः प्रसूयते ॥२३

कृत्वा दशधा खंडं गुंजामूलं निवद्धय कटिदेशे ।
सूत्रैः सप्तभि रतं[9] सुखप्रसूतिं[10] भामिनी लभते ॥२४

मातुलिंगस्थमूलानि मधुकं मधुसंयुतम् ।
घृतेन सह दातव्यं सुखं नारी प्रसूयते ॥२५

वलांशुमत्यातिविषावृहत्यौ पाठानिशादारुजलं[11] गुडूची ।
एभिःसुपिष्टैः खलु गर्भिणीनां तैलं विपक्वं पयसा प्रशस्तम् ॥२६

अभ्यंगकर्णांतटपूरणेन[12] सर्वामयानां प्रलयं विधत्ते ।
गर्भस्य पुष्टिं सवलं शरीरं[13] कृशानुवृद्धिं रुचिरां रुचिं च[14] ॥२७

अश्वत्थोत्तरमूलं तंदुलपयसा निघृष्य[15] या[16] पिवति ।
सद्यो भवति विशल्या विमूढगर्भापि नात्र संदेहः ॥२८

प्रशस्ते रक्षिते दक्षे[17] हतस्त्रीभिरलंकृते ।
प्रसूता[18] सूतिकागारे रक्षामंत्राभिमंत्रिते[19] ॥२९

---

१ घ. योनौ । २. घ. संकुरुते । ३. घ. गर्भं । ४. घ. प्रपीड़ितानां । ५. घ. समेताः । ६. घ. भार्या । ७. घ. क. ०वेदनान्वितैः । ८. घ. धूपनात् कटुक० । ९. घ. रंतु । १०. घ. ०प्रसूति । ११. घ. जले । १२. घ. अभ्यंगकर्णेतरंपूरणेन । १३. घ. सवले शरीरं । १४. घ. मरुचिं रुचिं च । १५. घ. निघृष्ट । १६. घ. यः । १७. घ. रक्षते दिक्षे । १८. घ. प्रसूतां । १९. घ. सूतगाकारे ।

प्रणवो भुवनेशानो स्मरस्त्री रक्षयुग्मकम् ।
वन्हिजायावधिर्मंत्रः[1] प्रोक्तो दशभिरक्षरैः ॥३०

डोरकं[2] रक्तसूत्रेण[3] स्त्रीप्रमाणं तु कारयेत् ।
सप्तग्रंथिसमायुक्तं सप्ततंतुविनिर्मितम् ॥३०

सूतिकाभवनद्वारि बध्नीयान्मंत्रमंत्रितः[4] ।
रक्षामंत्रः समाख्यातः सर्वेषां हितकाम्यया ॥३१

अबलां[5] रुधिरश्रावादबलाभिरुपाचरेत्[6] ।
स्नेहाभ्यंगेन मतिमान् निर्वातं[7] स्थानरक्षणैः ॥३२

वाष्टोका[8] मागधीं 'चापि मदिरां च प्रपाययेत्'[9] ।
एवं द्वित्रिदिनं तज्ज्ञैः[10] कर्त्तव्या स्त्रीहिता क्रिया[11] ॥३३

यवागूं पायये 'द्यस्तु यवागुं वा वलादिकम्'[12] ।
सात्म्यं(यं) कालं च योऽपीक्ष्य त्रिरात्रं भोजयेत्तथा ॥३४

यवकोलकुलत्थानां जांगलस्य रसोत्तमैः ।
अदनं[13] भोजयेत्सात्म्यं(यं)[14] कृशां तु[15] रक्षयेत्ततः ॥३५

अनेन विधिना दक्षः[16] प्रशक्ताभिः सुरक्षिताम्[17] ।
दक्षाभिगर्भजनने स्त्रीभिस्तां समुपाचरेत्[18] ॥३६

कोदमेन पयसा स्नेहैः सुस्निग्धां स्नापयेत्ततः ।
पथ्ययुक्तिविधानज्ञैः[19] पश्चाद्दानादि कारयेत् ॥३७

॥ इति श्रीकल्याणेन कृते बालतंत्रे सुखप्रसवोपायकथनं नाम षष्टमः (ष्ठः) पटलः ॥



---

१. घ. ०विधिमंत्रः । २. घ. डोरकां । ३. घ. सूत्रस्य । ४. घ. ०मंत्रितं । ५. घ. अबला । ६. घ. ०दबलां सुमपाचरेत् । ७. घ. निर्वात । ८. घ. वार्षिकां । ९. घ. वापि मदिरा मधुपाययेत् । १०. क्र. तर्ज्ञैः । ११. घ. स्त्रिस्तु हितां-क्रिया । १२. घ. क्षीरं वापि गुं'वावलादिकं । १३.-घ. त्रिदिनं । १४. घ. साम्यं । १५. घ कृशा नु । १६. घ. दक्षा । १७. घ. प्रशस्ताभिस्तु रक्षितां । १८. घ. समुच्चरेत् । १९. घ. यथायुक्ति विधानेन ।

## सप्तमः पटलः

अतः परं प्रवक्षामि बालरक्षां यथाक्रमम्[१] ।
प्रथमे दिवसे नाम्नी नन्दिनी क्रमते शिशुम् ।।१
तद्गृहीतस्य बालस्यः ज्वर स्यात्प्रथमं ततः ।
गात्रे[२] शोपस्तथा[३] स्वेदो नाहारेच्छा[४] भृशं भवेत् ।।२
छर्दिर्मूर्च्छा च कम्पश्च शोषो दीनस्वरस्तथा ।
विधानं[५] तत्र वक्ष्यामि येन मुंचति नन्दिनी ।।३
कूलद्वयमृदा कुर्यात्पुत्रिकां सुमनोहराम् ।
शुक्लोदनं शुक्लगंधं तथा गंधानुलेपनम् ।।४
शुक्लपुष्पाणि पंचैव ध्वजाः पंच प्रदीपकाः ।
स्वस्तिकाः पंच पूर्वाह्णे पूर्वस्यां दिशि संयुतः ।।५
वलिं दद्यादथो राजन् सर्पपोशीरमेवच ।
शिवनिर्माल्यं[६] मार्जारनृकेशा निंबपत्रकम् ।।६
गव्यघृतेन चैतेन[७] धूपयेच्चैव बालकम् ।
एवं दिनत्रयं कृत्वा चतुर्थे मंत्रवारिणा ।।७
स्नापयेद्बालकं पश्चाद्ब्राह्मणं वापि भिक्षुकम् ।
क्षीरेण भोजनं देयं सुस्थो[८] भवति बालकः[९] ।।८
स्नाने[१०] च पूजने चैव वलिदाने च मार्जने ।
वक्ष्यमाणेन मंत्रेण कर्त्तव्यं[११] विधिना ततः ।।९

**मंत्रः—**

'प्रणवो भुवनेशानी'[१२] तत्स्वाहा[१३] षडक्षरः ।
एवं कृतस्य बालस्य सुखं भवति नान्यथा ।।१०
।। इति दिवसगृहीतबालतंत्रे ग्रहनिवारणम् ।।

---

१. घ. पदा क्रमं । २. घ. गात्र । ३. घ. तदा । ४. क. आहारेच्छा । ५. घ. विधान्नं । ६. घ. निर्माल्य । ७. घ. गव्यं घृतं च तेनंव । ८. घ. स्वस्थो । ९. घ. बालकं । १०. स्नापने । ११. घ. कर्त्तव्यां । १२. घ. भुवनेसनि खेतत्स्वाहा । १३. घ. ॐ ह्रीं स्वाहा ।

द्वितीये दिवसे बालं गृह्णाति च सनंदना[1] ।
ततो भवेज्ज्वरः[2] पूर्वः संकोचो[3] हस्तपादयोः ॥११

दंतान् खादति श्वसिति[4] निमीलयति चक्षुषी ।
आहारं च न गृह्णाति दिवा रात्रौ च रोदति ॥१२

अक्षिरोगं छर्दनं च भवेद्धीतिं पुनः पुनः ।
कृशत्वं जायतेऽत्यंतं चिन्हमेतत्प्रकीर्त्तितम् ॥१३

तंदुलप्रस्थपिष्टेन विनिर्मायाथ[5] पुत्रिकाम् ।
त्रयोदशध्वजा देया[6] स्वस्तिका धवलोदनम् ॥१४

प्रस्थप्रमाणपिष्टेन सिद्धान्नं[7] पूपकोत्सकाः ।
मांसं चेत्येतदखिलं पश्चिमायां दिशि क्षिपेत् ॥१५

पश्चिमायां च संध्यायां एवं दद्याद्दिनत्रयम् ।
धूपादि[8] मंत्रस्नानं तु प्रथमोक्तक्रमेण वै ॥१६

॥ इति द्वितीयदिवसे बालग्रहणम् ॥

तृतीयेऽह्नि च गृह्णाति घंटाली बालकं ग्रही ।
तच्चेष्टा[9] च करोद्वेगः कासश्वासास्यशोषणम् ॥१७

गजदंता च गोदन्ता तथा केशैस्तु अञ्जनी ।
अजाक्षीरेण संपिष्य ततो बालं प्रलेपयेत् ॥१८

धूपयेन्निंबपत्राणि नखसर्षपराजिका ।
लेपतो[10] धूपितो बालः सुखं प्राप्नोति निश्चितम् ॥१९

प्रथमोक्तप्रकारेण शेषमन्यत्समापयेत् ।
एवं कृते तु सा देवी बालकं मुंचति स्फुटम् ॥२०

॥ इति तृतीये दिवसे बालग्रहहरम् ॥

---

१. घ. वसुनंदना । २. घ. भवज्वर । ३. घ. संकोचं । ४. घ. खादंति । ५. घ. विनार्माायाथ पुत्रिका । ६. घ. दीपाः । ७. घ. सिद्धाण्याश्च प्रमत्सका । ८. घ. धूपश्च । ९. घ. तेच्चैष्टा च उद्वेग । १०. घ. लेपेतो ।

चतुर्थेऽह्नि च गृह्णाति कटकोली ग्रही[1] शिशुम् ।
तच्चेष्टा रोचकोद्वेगः फेणोद्गाराद्यवीक्षणम्[2] ॥२१

गजदन्ताहिनिर्मोको[3] राजिकामूलं[4] लेपयेत् ।
धूपयेत्सर्षपारिष्ट[5] केशैर्मुञ्चति सा ग्रही ॥२२

मंत्रस्नानादिकं सर्वं बलिदानादिकं तथा ।
प्रथमोक्तप्रकारेण शेषमन्यत्समापयेत् ॥२३

॥ इति चतुर्थदिवसे बालग्रहहरम् ॥

पंचमेऽह्नि च हंकारी[6] ग्रही गृह्णाति बालकम् ।
तच्चेष्टा जृम्भणं श्वासमुष्टिबंधोर्द्ध्ववीक्षणम् ॥२४

शिलातालवचो[7]-लोध्रमेषशृंगैः प्रलेपयेत् ।
लशुनं निम्बपत्राणि सिद्धार्थैर्धूपयेत्ततः ॥२५

एवं मुंचति सा बालं बलिदानाद्विशेषतः ।
अवशिष्टं तु यत्सर्वं प्रथमोक्तप्रकारतः ॥२६

॥ इति पंचमदिवसे गृहीतबालग्रहहरम् ॥

षष्ठे च दिवसे नाम्नी षद्वायी[8] गृह्णते शिशुम् ।
तच्चेष्टा गात्रविक्षेपो ह्रासरोदनमोहनम्[9] ॥२७

कुष्टगुग्गुलुसिद्धार्थगजदंतैर्घृतान्वितैः ।
धूपयेल्लेपयेच्चापि ततो मुंचति सा ग्रही ॥२८

॥ इति षष्ठदिवसे गृहीतबालग्रहहरम् ॥

सप्तमे दिवसे नाम्नी हिंसिका क्रमते शिशुम् ।
तच्चेष्टा जृम्भणं श्वासमुष्टिवंधस्तथैव च ॥२९

मेषशृंगं वचोरोध्रं[10] हरिताल मनःशिला ।
एतत्तु रुचिरं पिष्ट्वा ततो बालं प्रलेपयेत् ॥३०

---

१. घ. काकोली ग्रहितं । २. घ. फेणोद्गारादिगिक्षणे । ३. घ. निर्मोक । ४. घ. राजिमूलं तु । ५. घ. ०सर्षपारिष्टः । ६. घ. पंचमोह्न्यहंकारी । ७. घ. ०वचा । ८. घ. षट्कारी । ९. घ. ह्रासा० । १०. घ. वचारोध्र ।

बलिं दद्यात्तु मातृणां ततो मुंचति सा ग्रही ।
मंत्रस्नानादिकं सर्वं प्रथमोक्तक्रमेण तु ॥३१

इति सप्तमदिवसगृहीतबालग्रहहरम् ॥

अष्टमे दिवसे नाम्नी भीषणी क्रमते शिशुम् ।
कासते श्वासते चैव गात्रं[1] संकोचते भृशम् ॥३२
अपामार्गमुशीरं च पिप्पली चित्रक तथा ।
अजामूत्रेण संपिष्य ततो बालं प्रलेपयेत् ॥३३
गोशृंगनखकेशैस्तु[2] धूपयेद्बालकं ततः ।
मन्त्रस्नानादिकं सर्वं प्रथमोक्तक्रमेण वै ॥३४

॥ इति अष्टमदिवसगृहीतबालग्रहहरम् ॥

नवमे दिवसे बालं[3] मेषा गृह्णाति निश्चितम् ।
तच्चेष्टा त्रासनोद्वेगः स्वमुष्टिद्वयखादनम् ॥३५
वचा चंदनकुष्टौ वा[4] सर्षपास्तत्र लेपयेत्[5] ।
नखवानररोमाभ्यां धूपनान्मुंचति ग्रही ॥३६

। इति नवमदिवसगृहीतबालग्रहहरम् ॥

दशमे दिवसे नाम्ना[6] रोदना[7] क्रमते शिशुम् ।
तच्चेष्टा कासनं चैव रोदनं मुष्टिबंधनम् ॥३७
कुष्टोग्रासर्ज्जसिद्धार्थैर्लिपेन्निम्बेन धूपयेत् ।
मत्स्यमांससुरायुक्तो[8] बलिं निशि समाहरेत् ॥३८
अपामार्गाङ्कुरोशीरचंदनक्वाथवारिणा ।
शताभिमंत्रितः[9] कृत्वा त्रिसंध्यं परिषिंचयेत् ॥३९
एवं कृते तु[10] सद्यैव बालं मुंचति सा ग्रही ।
प्रथमोक्तप्रकारेण शेषमन्यत्समापयेत् ॥४०

॥ इति दशमदिनगृहीतबालग्रहहरम् ॥

॥ इति कल्याणेन कृते बालतंत्रे दिनगृहीतबालग्रहहरं नाम सप्तमः पटलः ॥

---

१. क. गात्र । २. घ. ०केशस्तु । ३. नाम्नि बालं गृह्णाति । ४. घ. ०कुष्टां च । ५. घ. सर्षपास्तकलेपयेत् । ६. घ. नाम्नि । ७. घ. रोदनां । ८. क. मच्छमांस० । ९. घ. सताभि० । १० ग. नु ।

## अष्ठमः पटलः

अथ मासगृहीतस्य बालकस्य विमुक्तये ।
बलिं वक्ष्यामि सुखदं सर्वतन्त्रेषु गोपितम् ॥१

प्रथमे मासि गृह्णाति कुमारी नाम योगिनी ।
उद्वेगज्वरशोषादि चेष्टितं तत्र जायते ॥२

नैर्ऋतं दिशमाश्रित्य संध्याकाले बलिं हरेत् ।
[1]नदीतीरद्वयाकृष्टमृदा देवीस्वरूपकम् ॥३

कृत्वा पूजा प्रकर्त्तव्या पुष्पधूपादिभिस्ततः[2] ।
वटकामुष्टिकायूपा[3] अग्रभक्तं गुडो दधि ॥४

चतुर्वर्णपताकाश्च प्रदीपाः पुष्पचन्दनम् ।
अपराह्णेऽथवा दद्यात् मन्त्रेणानेन मन्त्रवित् ॥५

ॐ नमो भगवते च रावणाय च बालकम् ।
मुंचयुगं[4] वन्हिजातमंत्रो विंशतिवर्णकः ॥६

॥ इति प्रथममासगृहीतबालग्रहम् ॥

द्वितीये मासि गृह्णाति बालकं मुकुटा-ग्रहो[5] ।
ग्रीवानिवृत्तिनिष्पन्दो वपुषः पीतशीतताम्[6] ॥७

वक्त्रसंशोषणोद्गारा[7] रोचकानि तदाश्रयम्
क्षीरान्नकृशरायूषतिलतंदुलसंयुतम् । ८

कृष्णपुष्पांसुकालेपैस्तत्र[8] मातृबलिं हरेत् ।
कसुंभं लसुनं निंवं संचूर्ण्यं धूपयेत् शिशुम् ॥९

॥ इति द्वितीयमासः ॥

तृतीये मासि गृह्णाति बालकं गोमुखी ग्रहो ।
तच्चेष्टा रोदनं निद्रा बहुमूत्रपुरीषकम् ॥१०

---

१. घ. नदी तीरें० । २. घ. ०स्तथा । ३. घ. ०पूपा । ४ घ. मुंच मुंच । ५. घ. समुदागृही । ६. घ. ०शीतता । ७. घ. ०गारो । ८. घ. ०पुष्पांशुकालेपं० ।

उन्मीलयति नेत्राणि रोगान्धो[1] मधुगंधवान् ।
प्रियंगुतिलकुलमाषं चतुःपिण्डकुमोदकैः[2] ॥११
जपाकुसुमसंयुक्तं मध्याह्ने बलिमाहरेत्
धूपयेत्तिलसिद्धार्थैस्ततो मुञ्चति सा ग्रही ॥१२

॥ इति तृतीयमासः ॥

चतुर्थे मासि गृह्णाति बालकं पिंगला ग्रही
पयःपानारुचिः स्वेदं[3] भुजस्कंधास्यशोषणम्[4] ॥१३
पूतिगंधस्तु नाचेष्टा तत्र नास्ति प्रतिक्रिया ।
न मंत्रं नौषधं तत्र बलिं तत्र न कारयेत् ॥१४

॥ इति चतुर्थमासः ॥

पंचमे मासि गृह्णाति बालकं वडवा ग्रही ।
तच्चेष्टा रोचकं कासो मुखशोषणरोदने । १५
सीदन्ति सर्वगात्राणि विश्रान्तं विपनं(पिबते) पयः[5] ।
ओदनं पोलिकाशाकं मत्स्यमांसादि दापयेत्[6] ॥१६

॥ इति पंचममासः ॥

षष्ठे मासे च गृह्णाति पद्मा नाम ग्रही शिशुम् ।
तच्चेष्टा रोदनं शूलं स्वरभ्रंसस्तथैव च ॥१७
शिखिकुक्कुटमेषाणां मांसमाषोदनं सुरा ।
कुलत्थं चेति संप्रोक्तं बलिना मुञ्चति ग्रही ॥१८

॥ इति षष्ठमासः ॥

सप्तमे मासि गृह्णाति बालकं पूतना ग्रही ।
क्षीरं पिबति दुःखेन[7] रोदति क्षणछर्दिवान् ॥१९
कृशरा चोदनं[8] मांसं मत्स्यं क्षीरं सुरासवः ।
कुल्माषास्तिलचूर्णं च गंधपुष्पाणि चैव हि ॥२०

---

१. क. रोगंधो । २. घ. ०कमोवकैः । ३. घ. चैत्यं । ४. घ. भुजस्पंदास्य शोषणे । ५ घ. विपते पयः । ६. घ. भक्ष्याणि लेपिकाश्चैव स्वस्तिकं पद्मकं तथा । दक्षिणां दिशिमाश्रित्य मध्यान्हे बलिमाहरेत् । ७. घ. विस्रष्टते । ८. घ. उशीरं चंदनं ।

पूर्वां दिशं[1] समाश्रित्य मध्याह्ने बलिमाहरेत् ।
अन्यत्सर्वं प्रकर्त्तव्यं प्रथमोक्तक्रमेण वै ॥२१

॥ इति सप्तममासः ॥

अष्टमेमासि गृह्णाति बालकं अर्जिका ग्रही ।
गात्रभंगो ज्वराक्षिरुक् प्रलापः छर्द्दिरेव च ॥२२
उत्तरां दिशमाश्रित्य बलिं तस्यै प्रदापयेत्[2] ।
प्रथमोक्तप्रकारेण शेषमन्यत्समापयेत् ॥२३

॥ इति अष्टममासः ॥

नवमे मासि गृह्णाति बालकं कुंभकर्णिका ।
तच्चेष्टा रोचकः छर्दिर्ज्वरपातालगंधवान् ॥२४
कुल्माषपललक्षीरमत्स्यमांससमन्वितम् ।
ईशान्यां दिशि मध्यान्हे बलिमामुञ्चति ग्रही ॥२५

॥ इति नवममासः ॥

दशमे मासि गृह्णाति बालकं तापसी ग्रही ।
तच्चेष्टा गात्रविक्षेपक्षीरद्वेषाक्षिमीलनम् ॥२६
पीतरक्तोदनायूष[3]–मत्स्यमांससुरासवैः ।
कुल्माषं तिलपिष्टा च गंधपुष्पाणि चैव हि ॥२७
पिष्टघंटापताकाभ्यामुदीच्यां दिशि प्राहरेत्[4] ।
मध्याह्ने समये तावत्ततो मुंचति सा ग्रही ॥२८

॥ इति दशममासः ॥

एकादशे मासि नाम्नी सुग्रही ग्रहते शिशुम् ।
तया गृहीतमात्रस्तु षरदोनः[5] प्रजायते ॥२९
न मन्त्रं नौषधं तस्य बलिं तस्य न दापयेत् ।
क्रियते चेद्बलिं तत्र प्रथमोक्तक्रमेण वै ॥३०

॥ इति एकादशमासः ॥

---

१. क. पूर्वा । २. घ. प्रदापयत् । ३. घ. ०पुष्प(ष्ट) । ४. घ. माहरेत् । ५ घ. रोदनेन

द्वादशे मासि गृह्णाति बालकं बालिका ग्रही ।
तच्चेष्टाऽरोचकं श्वासतृष्णा चैव पुनः पुनः ॥३१

दध्यन्नं तिलकुल्माषमोदनानि[1] बलिं हरेत् ।
मध्याह्नसमये प्राच्यां ततो मुंचति सा ग्रही ॥३२

क्षीरवृक्षकषायेण स्नापयेत्तत्प्रशान्तये ।
प्रथमोक्तप्रकारेण शेषमन्यत्समापयेत् ॥३३

॥ इति श्रीकल्याणकृते बालतन्त्रे मासेषु गृहीतबालग्रहहरं नाम अष्टमः पटलः ॥

## नवमः पटलः

अथ वर्षे गृहीतस्य बालकस्य विमुक्तये ।
बलिं वक्ष्यामि सुगमं येन संपाद्यते सुखम् ॥१

प्रथमे वत्सरे बालं ग्रही गृह्णाति नन्दिनी ।
अरोचकाक्षिविक्षेपः[2] गात्रदाहप्ररोदनः[3] ॥२

पतनं च सदा भूमौ चेष्टितं तत्र लक्षयेत् ।
गुडान्नदधिकुल्माषपोलिकामत्स्यकासवैः ॥३

तिलचूर्णाभिषेचैव(केन) प्राच्यां दिशि बलिं हरेत् ।
केशगोखुरगोदतैर्धूपयेन्[4] मुञ्चति ग्रही ॥४

स्नापयेत् पंचगव्येन तिलतैलेन दीपकम् ।
पूर्वां[5] तु दिशमाश्रित्य एकरात्रिं बलिं हरेत् ॥५

॥ इति प्रथमवर्षः ॥

द्वितीये वत्सरे बालं ग्रही गृह्णाति रोदनी ।
रक्तमूत्रज्वराध्मान[6]-पद्मकेसरवर्णता ॥६

स्फुरते दक्षिणं हस्तं रोदनं च पुनः पुनः ।
तिलापूपककुल्माषगुडान्नदधिमोचकैः[7] ॥७

---

१. घ. ०मोदकान्नं । २. क. रोचकाक्षि० । ३. घ. ०प्ररोदनं । ४. घ. ०धूपयति । ५. क. पूर्वं । ६. घ. ०जराध्मात । ७. घ. ०मोदकैः ।

सफलं स प्रतिछादं (सायं) प्राच्यां दिशि बलिं हरेत् ।
[1]धूपयेत्सर्पिनिर्मोकराजिभ्यां[2] मुञ्चति ग्रही ॥८

॥ इति द्वितीयवर्षः ॥

तृतीये वत्सरे बालं गृह्णाति धनदा ग्रही ।
अवेक्षणमनाहारो[3] ज्वरशोषांगसादने[4] ॥९
स्फुरणं वामपादस्य ज्ञातव्यं[5] तत्र चेष्टितम् ।
दधिमांससुरामत्स्या गुञ्जान्नतिलपिष्टकैः ॥१०
फलकस्य प्रतिमायाः सहोदीच्यां बलिं हरेत् ।
पिच्छैर्मयूरसंभूतैस्ततो मुञ्चति सा ग्रही ॥११

॥ इति तृतीववर्षः ॥

चतुर्थे वत्सरे बालं ग्रही गृह्णाति चंचला ।
चेष्टितं तत्र विज्ञेयं ज्वरश्वासांगसादने ॥१२
तिलकृष्णान्नवासोभिः सार्द्धं[6] तत्र बलिं हरेत् ।
मेषशृगस्य धूपः स्यात्ततो मुञ्चति सा ग्रही ॥१३

॥ इति चतुर्थवर्षः ॥

पंचमे वत्सरे बालं ग्रही गृह्णाति नर्त्तकी ।
तद्वेजनं[7] मुहुर्मूत्र[8]-श्रवणं गात्रसादनः ॥१४
मुखशोषणवैवश्ये[9] चेष्टितं तत्र लक्षयेत् ।
मत्स्यमूलकमांसानि पक्वान्नकृशरापयः ॥१५
पायसं च सुरामद्यं तिलं चोक्तं बलिं हरेत् ।
सफलं सपरिच्छंदं[10] सप्तरात्रि बलिं हरेत् ॥१६
केशराजिसगोदंतलशुनैरपि धूपयेत् ।
त्रिसंध्यं संनिधानेन ततो मुञ्चति सा ग्रही ॥१७

॥ इति पंचमो वर्षः ॥

१. घ. धूपयत्० । २. घ. ०रजिन्यां । ३. घ. अविक्षण मनोहारो । ४. घ. ०शेषांग० । ५. घ. दातव्यं । ६. क. सार्द्धं । ७. घ. उद्वेगनं । ८. घ. महुमंत्र । ९. घ. मुखशोषो वैरस्ये । १०. घ. सु प्रतिछंद ।

षष्ठे च वत्सरे बालं गृह्णाति यमुना ग्रहो ।
तच्चेष्टा रोदनोद्गारदुष्टाहार-[1]विहारतः ॥१८

मत्स्यं मांसं सकृशरं पोलिका पायसं दधि ।
सुरामोदकमित्येतैः[2] प्रक्षिपेच्चत्वरे बलिम्[3] ॥१९

गोरोमखुरश्रृंगैश्च धूपयेन्मुञ्चति ग्रही ।
स्नानं पंचदलैः कार्यं सुखं भवति नान्यथा ॥२०

॥ इति षष्ठं वर्षविधिः ॥

सप्तमे वत्सरे बालं ग्रही गृह्णाति नर्त्तकी ।
तया गृहीतमात्रस्तु अन्धो भवति बालक ॥२१

सीदन्ति सर्वगात्राणि मुखं च परिशुष्यति ।
मूत्रं च स्रवते नित्यमुद्वेगं च पुनः पुनः ॥२२

पायसं कृशरान्नं च तिलपिष्टं सुरासवम् ।
पक्वानि मत्स्यमांसानि दधि मूलं च कंदकम् ॥२३

सर्षपा धूपलसुनं तिलतैलेन दीपकम् ।
स्नापनं पंचगव्येन[4] सप्तरात्रि बलिं हरेत् ॥२४

॥ इति सप्तमवर्षः ॥

अष्टमे वत्सरे बालं गृह्णाति च कुमारिका[5] ।
तया गृहीतमात्रस्तु ज्वरेण परिदह्यते[6] ॥२५

सीदन्ति सर्वगात्राणि त्रासयन्ति पुनः पुनः ।
कृशरान्नौदनं[7] चैव गंधमाल्यं[8] तथैव च ॥२६

मेदश्रृंगस्य धूपोऽत्र पूर्वस्यां दिशिमाहरेत् ।
अयं सिद्धबलिः[9] प्रोक्तो बालकानां सुखावहः[10] ॥२७

॥ इति अष्टमः वर्षः ॥

---

१. घ. नराहार० मिथ्याहार० । २. घ. नित्येतैः । ३. घ. प्रक्षिपेच्च नरो बलिं । ४.घ. पंचगव्यंत । ५. घ. कुमारिकः । ६. घ. परिदह्यति । ७. घ. कृशरा ओदनं । ८. घ. ०माल्यां ९. क. सिद्धलिं । १०. घ. सुखावह ।

नवमे वत्सरे बालं कलहंसा ग्रही शिशुम् ।
तया गृहीतमात्रस्तु स्याद्दाहो ज्वरिताकृशः ॥२८

पोलिकायूपदध्यन्नैः पंचरात्रिं बलिं हरेत् ।
कुष्टोग्राराजिलसुनैर्लेपयेद्दधि[1] धूपयेत् ॥२९

निंबभेदंतरोगोम्ला बालं मुञ्चति सा ग्रही ।

॥ इति नवमवर्षः ॥

दशमे वत्सरे बालं देवदूती ग्रही स्मृता ।
गृह्णाति विलते चेष्टा नृत्यवलान धावनम्[1] ॥३०

विण्मूत्रं वमनं क्रीडा हसनं स्वग्रहेक्षणम् ।
यामि यामीति वचनं नेत्ररोगाङ्गसादनम् ॥३१

सदा पानासने श्रद्धा[2] विधुरालापनं तथा ।
कोद्रवोदनकुल्माषा. पोलिका दधि मोदकः[3] ॥३२

रक्तान्नै रक्तपुष्पैश्च त्रिरात्रं बलिमाहरेत् ।
तिलैश्च जुहुयात्पश्चादष्टोत्तरशतं सुधीः ॥३३

॥ इति दशमवर्षविधिः ॥

सर्वं एकादशे वर्षे[4] ग्रही गृह्णाति बालिका[5] ।
कासश्वासाक्षिरोगश्च काकरवश्च तद्गुणाः ॥३४

पोलिकागुडकुल्मापशकुलीशाकमोदकैः ।
पक्वमत्स्यामिपक्षीरसंयुक्तं बलिमाहरेत् ॥३५

त्रिरात्रं निंबसिद्धार्थं[6] धूपयेन्मुञ्चति ग्रही ।
अनुक्तमपि यत्सर्वं[7] प्रथमोक्तक्रमेण वै ॥३६

॥ इति एकादशवर्षः ॥

द्वादशे वत्सरे बालं ग्रही गृह्णाति वायसी[8] ।
तच्चेष्टा वक्त्रसंशोप मुखवाद्यांगसादनम् ॥३७

---

१. ख. नृत्तवलानव धावनं । २. घ. सदा पार्नसनाश्रद्धा । ३. घ. ख. पुस्तक-द्वयेऽतो विशेष मंत्रः—प्रणवं मुञ्च मुञ्चेति वियोजय वियोजय । आगच्छ द्वितय बलिके स्वाहे-ति प्रकीर्त्तितः । ४. घ. ख. बालं । ५. घ, श्चर्कका, ख. बालका, घ. कालिका । ६. ०घ. सिद्धार्थें । ७. सर्वे । ८. घ वत्सरे । ९. घ. गृह्णाति वायसी गृही ।

रक्तद्रव्यैर्बलिं तत्र हरेन्मुञ्चति सा ग्रही ।
स्नापनं पंचगव्येन धूपो निंबेन सर्षपैः ॥३८

॥ इति द्वादशवर्षः ॥

वर्षे[1] त्रयोदशे बाल ग्रही गृह्णाति यक्षिणी ।
तच्चेष्टा किल हृद्रोगं ज्वरो रोदनहासनम् ॥३९

शाल्योदनसुरामांसमत्स्यकुल्माषपायसैः ।
दद्यात्सकृशरप्रोक्तैर्मध्याह्ने बलिमाहरेत् ॥४०

॥ इति त्रयोदशवर्षः ॥

वर्षे चतुर्दशे बालं स्वच्छदा नामतो ग्रही ।
गृह्णाति चेष्टा तत्र स्याच्छोणितश्रवण सदा ॥४१

शूल च नाभिदेशे स्यात्तत्र नास्ति प्रतिक्रिया ।
श्रमस्तु व्यर्थतां याति तस्मात्तत्र न कारयेत् ॥४२

॥ इति चतुर्दशवर्षः ॥

अथ पंचदशे वर्षे गृह्णाति बालकं कपी ।
तया गृहीतमात्रस्तु भूम्यां पतति निःस्वनः ॥४३

ज्वरश्च जायते तीव्रो निद्रात्यन्तं प्रजायते ।
पायसं कृशरं मांसं कुल्माषं च सुरासवम् ॥४४

पूपकाः पोलिकाश्चैव पुष्पाणि पांडुराणि च ।
स्नापनं पञ्चगव्येन धूपनं वत्सक त्वचा ॥४५

दिनत्रय[2] प्रदोषे तु बलिं दद्याद्विचक्षणः ।
सुख भवति तेनाशु नात्रकार्यं विचारणम्[3] ॥४६

॥ इति पंचदशवर्षः ॥

षोडशे वत्सरे बालं[4] ग्रही गृह्णाति दुर्जया ।
तच्चेष्टायासनं[5] कम्पो यास्यामीति वचो मुहुः ॥४७

---

१. घ. वर्ष । २. घ. त्रये । ३. घ. विचारणाम् । ४. घ. ततो । ५. घ. स्वसनं । ख० चेष्टासनं ।

कुल्माषकृशरापूपतिलपिष्टान्नफल्गुकैः ।
दध्ना सह बलिं दद्यात्प्राच्यां दिशि दिनत्रयम् ॥४८

[1]धूपयेन्नखगोश्रृंगलसुनैर्मुञ्चति ग्रही ।
स्नापयेत्पञ्चगव्येन तिलतैलेन दीपकम् ॥४९

॥ इति षोडशवर्षविधिः ॥

इति श्री कल्याणेन कृते बालतन्त्रे वर्षगृहीतबालग्रहहरं नाम नवमः[2] पटलः ॥

## दशमः पटलः

दिने मासे च वर्षे च बालशान्तिं वदाम्यहम् ।
प्रथमे दिवसे वर्षे बालं योगिनीमातृदा[3] ॥१
अथवा नंदनीनाम्नी पूतनाऽऽक्रमते शिशुम् ।
तद्गृहीतबालस्य ज्वरः स्यात्प्रथमं ततः ॥२
गात्रे शोषस्तथा स्वेदो नाहारेच्छा भृशं भवेत् ।
छर्दिमूर्च्छा च कम्पंश्च शोषो दीनस्वरस्तथा ॥३
विधानं तस्य वक्ष्यामि येन मुञ्चति पूतना ।
नदीमृत्तिकया कुर्यात् शोभनां पुत्रिकां ततः ॥४
शुक्लोदनं शुक्लगंधं तथा गंधानुलेपनम् ।
शुक्लपुष्पाणि वै पञ्च ध्वजा पंच प्रदीपिका ॥५
स्वस्तिका पंच पूर्वाह्णे पूर्वस्यां दिशि संयुतः ।
बलिं दद्यादथो राजन् सर्षपोशीरमेव च ॥६
शिवनिर्माल्यमार्जारनृकेशा निंबपत्रकम् ।
गव्यं घृतं चेत्यनेन धूपयेच्चैव बालकम् ॥७
एवं दिनत्रयं कृत्वा चतुर्थे शान्तिवारिणा ।
स्नापयेद्बालकं पश्चात् ब्राह्मणं चापि भिक्षुकम् ॥८
क्षीरेण भोजनं देयं स्वस्थो भवति बालकः ।
वक्ष्यमाणेन मंत्रेण अष्टोत्तरशतं जपेत् ॥९

१. ख. धूपयेनखजो० । २. घ. ख. नवम । ३. घ. मामृदा ।

शान्तिवारि तु तत्प्रोक्तं सर्वागमविशारदैः ।
पूजायां बलिदाने च[1] [2]स्नापयेन्मंत्रमुच्यते ॥१०

मंत्रः—

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च स्कंदो वैश्रवणस्तथा ।
रक्षतु त्वरितं[3] बालं मुञ्च मुञ्च कुमारकम् ॥११

॥ इति प्रथमदिवसमासवर्षगृहीतबालग्रहहरणविधिः ॥

द्वितीये दिवसे मासे वर्षे पातु सुनंदना[4] ।
गृह्णाति पूतना बाल योगिनो स्तनदायिका[5] ॥१२

ततो भवेज्ज्वरः पूर्वं संकोचं हस्तपादयोः ।
दंतान् खादति[6] नियतं निमीलयति चक्षुषी ॥१३

आहारं च न गृह्णाति दिवारात्रं च रोदति ।
अक्षिरोगं छर्दनं[7] च भवेद्भीतिः[8] पुनः पुनः ॥१४

कृशत्व जायतेऽत्यंतं चिह्नमेतत्प्रकीर्तितम् ।
तंदुलप्रस्थपिष्टेन विनिर्मायाथ पुत्रिकाम् ॥१५

त्रयोदश ध्वजा दीपाः स्वस्तिका धवलोदनम्[9] ।
प्रस्थप्रमाणपिष्टेन सिद्धापूपाश्च मस्तकाः[10] ॥१६

मांसं चेत्येतदखलं पश्चिमायां दिशि क्षिपेत् ।
पश्चिमायां च संध्यायामेवं दद्याद्दिनत्रयम् ॥१७
धूपोऽयं मंत्रस्था(स्ना)नं तु प्रथमोक्तक्रमेण वै ।

मंत्रः—

प्रणवो हृदये चामुण्डे भगवति विद्युच्च[11] जिह्वे हां द्वितयं हीं[12]
च अपरं हीं तु[13] चैव दुष्टग्रहा हुं हुं वषे(दे)त् ॥१८
गच्छन्तु यात्रान्यस्थाने[14] रुद्रो ज्ञापयति[15] स्वाहा ।
सर्वकार्येषु मंत्रोऽयं सुखदः[16] समुदाहृतः ॥१९

॥ इति द्वितीयदिवसमासवर्षेषु बालग्रहणम् ॥

---

१. घ. बलिदानं च। २. घ. स्नापने। ३. क. त्वरि। ४. घ. हायने वस्तु नन्दनम्। ५. घ. स्तनदापि वा। ६. घ. वादति। ७. घ. छर्द्दिनं। ८. घ. भवेद्भीतं। ९. घ. द्यवलोदनम्। १०. घ. मत्स्यकाः। ११. घ. त्र। १२. घ. हां.। १३. घ. त्वं। १४. घ. न्यतः। १५. घ. जापयेति च। १६. घ. सर्वदा।

तृतीये दिवसे मासे वर्षे गृह्णाति पूतना[१] ।
प्रस्थप्रमाणपिष्टेन पुत्रिकां रचयेत्ततः ॥२०
रक्तोदनं ध्वजा रक्ता स्वस्तिको रक्तमेव च ।
रक्तपुष्पं रक्तगन्धं तथा रक्तानुलेपनम् ॥२१
पश्चिमायां च संध्याया[२]–मुदीच्यां निक्षिपेद्बलिम्[३] ।
प्रथमोक्तप्रकारेण स्नानं धूपं[४] समाचरेत् ॥२२
मन्त्रः— प्रणवो हृदयं चामुंडे[५] भगवति विद्युज्जिह्वे ।
ह्रां ह्रीं ह्रूं च [६]मुञ्च मुञ्च रक्षां कुरु कुरु ॥२३
बलिं गृह्णयुगं स्वाहा पंचत्रिंशल्लिपिर्मतः[७] ।

॥ इति तृतीयदिवसमासवर्षेषु बालग्रहहरम् ॥

चतुर्थेऽह्निमवाप्नोति वर्षं गृह्णाति बालकम्[८] ।
मुखं मण्डलिकानाम्नी पूतना[९] नाम एव च ॥२४
गात्रभंगोन्नतिर्मूर्ध्नोश्चाल्पं चाक्षिमीलनम् ।
विवर्ण्य[१०] श्यामता श्वासः कासोऽरुचिरनिद्रता[११] ॥२५
तिलपिष्टमयीं कृत्वा पुत्रिकां बिल्वकंटकैः ।
अष्टांगैरेपयेत् श्वेतपुष्पं शुक्लध्वजार्जुनः ॥२६
[१२]स्वस्तिको वर्द्धयेत् प्रस्थभक्तं तावदपूपकः ।
त्रिसंध्यं पश्चिमायां तु बलिं दद्यात्प्रयत्नतः ॥२७
अर्द्धप्रस्थमितास्तत्र पोलिका संप्रकीर्त्तिताः[१३] ।
गोश्रृंगं लसुनं सर्प्यनिर्मोकी निंबपत्रकम् ॥२८
मनुष्यकेशमार्जाररोमाण्याज्यं च गोस्तथा ।
एतैश्च धूपयेदेव दिने संध्यात्रये दिनम्[१४] ॥२९
मंत्रस्नानादिकं सर्वं प्रथमोक्तक्रमेण वै ॥३०

॥ इति चतुर्थदिवसमासवर्षेषु बालग्रहहरम् ॥

पंचमे दिवमे मासे वर्षे चैव विडालिका ।
हिक्का श्वासं च[१५] शूलं[१६] च गात्रभंगोऽरुचिस्तथा ॥३१

---

१. घ. पुस्तकेऽतः परमयमंशः-गात्रभंगः प्रलापश्च कंपज्वर तथारुचिः । निमीलनं नयनयो रोमांचो वमनं तथा । २. क. सध्या । ३. निक्षिद्बलिणं । ४. घ. धूप । ५. घ. चामुण्डेन । ६. मुंड । ७. घ. वलिर्मतः । ८. घ. चतुर्थेन्हि दिवसे मासे) षु वांधाति वर्षे गृह्णाति बालकं । ९. घ. पूतना चैव योगिनी । १०. घ. विवर्णं । ११. क. रुचिरतीगितम् । १२. घ. स्वस्तिकोर्ध्वं प्रस्था । १३. ग. सं प्रवृत्तिनं, घ. रोमाभ्याज्यं । १४. घ. दिवम् । १५ घ. श्वाश्च । १६. घ. मूर्च्छा ।

[1]कृतस्तत्र विशेषेण भवत्येव न संशयः ।
तदुलप्रस्थपिष्टेन विनिर्मायाथ[2] पुत्रिकाम् ॥३२

शुक्लोदनं ध्वजाः पंच स्वस्तिका पंच चोज्वलाः ।
पंच प्रदीपाः शुक्लानि कुसमानि च चन्दनम्[3] ॥३३

अपराह्णे वृक्षमूले पश्चिमायां दिशि क्षिपेत् ।
चतुर्थोक्तप्रकारेण धूपो देयः प्रयत्नतः ॥३४

मन्त्रः— ॐभगवतिमुच्चार्य[4] ह्रां ह्रीं हुँ फँ ततः परम् ।
च मुंच रक्षां कुरु कुरु बलिं गृह्ण गृह्ण च ॥३५

अस्तं ठद्वितयं तु चामुण्डेश्वर चंडिके ।
ठः ठः स्वाहा समाख्यातो मंत्रो बलिनिवेदने[4] ॥३६

॥ इ. पं. दि मा. वर्षेषु बा ग. हम् ॥

षष्ठे तु दिवसे मासे वर्षे षद्वारिकागृहीत्[5] ।
तच्चेष्टा गात्रविक्षेपो हासरोदनमोहनम् ॥३७

कुष्टगुग्गुलुसिद्धार्थ[6]–गजदंतंघृतप्लुतैः ।
धूपयेत् लेपयेच्चापि ततो मुंचति सा ग्रही ॥३८

बलिदानादिकं सर्वं प्रथमोक्तक्रमेण वै ।
एवं कृतेन विधिना बालकः सुखतां व्रजेत् ॥३९

॥ इति ष० दि० मा० व० बा० ग्र० हरम् ॥

सप्तमे दिवसे मासे वर्षे चैव तु कालिका ।
तत्रापि चेष्टा द्रष्टव्या छर्दिरोचककम्पनम् ॥४०

कासश्वासौ[7] च विज्ञेयौ तत्र नास्ति प्रतिक्रिया ।
एवं सति तु कर्त्तव्यं प्रथमोक्तक्रमेण वै ॥४१

॥ इति स० दि० मा० व० बा० ग्र० हरम् ॥

---

१. घ. ज्वर । २. क. निर्मायाक्ष । ३. घ. चन्दनैः । ४-४. घ. ह्रीं ह्रीं हुँ मुं ततः परं मुंच मुंच रक्षा २ कुरु २ बलिं गृह्ण २ च, अस्तं उठित द्वितयं चामुण्डे सवरि चंडिके ततः स्वाहा समाक्षतो मंत्रो बलिनिवेदने । ५. घ. वंटकारिकागृहीत् । ६. घ. सिद्धार्थं । ७. घ. कासश्वासंश्च ।

अष्टमे दिवसे मासे वर्षे गृह्णाति कामिनी ।
तया गृहीतमात्रस्तु ज्वरस्तापमयं भवेत् ।।४२।।

आहारं च न गृह्णाति[1] मुखं च परिशुष्यति ।
कूलद्वयं मृदा कृत्वा पुत्रिकां सुमनोहराम् ।।४ ।।

गोधूमान्नं मसूरान्नं शाकं च पललं तथा ।
ध्वजाः पंच समाख्याता दीपकाः पंच पोलिकाः ।।४४।।

गुग्गुलेन च संधूप्य[2] रक्तचन्दनपुष्पकैः ।
पूजयेद्यत्नवान् मत्री वक्ष्यमाणेन मंत्रिणा ।।४५।।

मंत्रस्नानविशेषस्तु प्रथमोक्तक्रमेण वै ।
एवं कृते शिशूनां वै सुखं चैव प्रजायते ।।४६ ।

।। इति अष्ट० दि मा० व० बालग्रहहरम् ।।

नवमे दिवसे मासे वर्षे नाम्नी तु बालकम् ।
गृह्णाति मदना चैव तच्चेष्टां च वदाम्यहम् ।।४७।।

ज्वरः छर्दिघृणाध्मानः कासः श्वासश्च तृट् तथा ।
गात्रभगं च शूलं च चिह्नान्येतानि बालके ।।४८।।

प्रस्थमात्रेण पिष्टेन विनिर्माय च पुत्रिकाम् ।
ओदनं मत्स्यं मांसं च पर्पटी चेक्षुशूलिकाम् ।।४९।।

निःक्षिपेत्पूर्वसंध्यायामुत्तरस्यां बलिं हरेत् ।
गोश्रृंगलसुनाभ्यां च धूपयेच्चैव बालकम् ।।५०।।

मन्त्रः— [3]ॐ नमो भगवते वासुदेवाय विष्णवे मण्डलं बलिमादाय
हन हन हुँ फट् स्वाहा ।।५१

।। इति नवमदिनमासवर्षग० बा० रो० ह० ।।

दशमे दिवसे मासे वर्षे गृह्णाति बालकम् ।
[4]रेवती नाम सा देवो ज्वरः छर्दिश्वासेङ्गितम् ।।५२।।

---

१. घ. आहारपुष्टं गृह्णाति । २. घ. सिंधूस्य । ३. घ. ॐ नमो भगवते वासुदेवाय कृष्णमण्डले बलिमादाय हन हन हुं फट् स्वाहा । ४. घ. रेवती ज्वरश्च शूलं च छर्दिश्वासोंगितं त्वदम् ।

अन्ने[1] द्वेषश्च कासश्च बलिर्देयो विचक्षणैः ।
प्रस्थप्रमाणपिष्टेन पुत्रिकां प्रतिकल्पिताम्[2] ॥५३
अष्टांगं लेपयेद्बिल्वः विटपं[3] कंटकैस्ततः[4] ।
गुडोदनेन[5] सर्पिश्च ध्वजानां पंचविंशतिः ॥ ५४
स्वस्तिकानां प्रदीपानां पंचविंशतिकल्पना ।
चत्वारि रक्तपुष्पाणि दक्षिणस्यां दिशि क्षिपेत् ॥५५
मंत्रः — ॐनमो भगवते च[6] वैश्वदेवाय हन हुं फट् स्वाहा ।
मंत्रोऽयं धूपदानं तु पूर्ववच्च[7] प्रतिक्रिया ॥५६

॥ इति द० दि० मा० व० बा० ग्र० ह० ॥

एकादशे दिने मासे वर्षे वा पूतनान्विता[8] ।
गृह्णाति बालकं पश्चात् ज्वरस्तस्य प्रजायते ॥५७
अन्नद्वेषो मुखे शोषो गात्रभंगश्च रोदनम् ।
पुत्रिकां माषपिष्टेन रचितां शुक्लमोदनम् ॥५८
पुष्पाण्यपि च शुक्लानि ध्वजानां पंचविंशतिः ।
स्वस्तिकानां प्रदीपानां पंचविंशतिरेव च ॥५९
एतत्सर्वं यमाशायां संध्यायां प्रातराहरेत् ।
मन्त्रः — ॐनमो भगवते[9] नारायण चन्द्रहासवज्रहस्ताय ज्वल-ज्वल
दुष्टग्रहादयः प्रणवो भुवनेशानी फट् स्वाहायं मनुर्मतः[10] ।

॥ इति एका० दि० मा० व० बा० ग्र० हरम् ॥

द्वादशे दिवसे मासे वर्षे वा पूतना शिशुम् ।
अद्भुताख्या प्रगृह्णाति ज्वरः स्यात्प्रथमं ततः ॥६०
रोदनं सर्वदा दंतखादनं नेत्ररुक् तथा ।
रोमांचं ताप इत्येतल्लक्षणं तस्य वै शिशोः ॥६१

---

१. घ. अन्नद्वेषश्च । २. घ. ०कल्पिता । ३. क. पिटपं । ४. घ. ०रतथा । ५. घ. गुडोदनं च । ६ घ. चैव । ७. घ. मंत्रोयं धूपदानं पूर्ववत् । ८ घ. पूतनार्चिता । ९ घ. भगवते च । १०. घ. मनुर्मितं ।

तंदुलप्रस्थपिंडेन[1] कृता चैव तु पुत्रिका[2] ।
त्रयोदश[3] स्वस्तिकाश्च ध्वजादीनां त्रयोदश ॥६२

अपूपमत्स्यमांसं च तथा पर्पटकामपि[4] ।
एतत्सर्वं दक्षिणस्यां दिशि सर्वं विनिक्षिपेत् ॥६३

मन्त्रः — ॐ नमो नारायण नृसिंहाय नमोऽस्तु ते ।
[5]ज्वलद्धस्तापहनद्वयं शोषयद्वितयं तथा ॥६४
पातयद्वितयं हुं हुं हुं हन[6] हनेति च ।

॥ इति द्वादश० ॥

त्रयोदशे दिने मासे वर्षे गृह्णाति बालकम् ।
भद्रकाली ज्वरो निद्रा वामहस्तस्य कम्पनम्[7] ॥६५

वेदना तु विनिश्वासः[8] कायः पित्ते विचेष्टिते[9] ।
पूर्वां दिशमपाश्रित्य[10] बलिं देव्यै[11] निवेदयेत् ॥६६

नदीतीरद्वयाकृष्टमृदा देवीस्वरूपकम् ।
कृत्वा पूजा प्रकर्त्तव्या पुष्प[12]–धूपादिभिस्तथा ॥६७
वटका लड्डुकापूपा[13] अभक्तं[14] च गुडो दधि ।
चतुर्वर्णपताकाश्च[15] प्रदीपाः पुष्पचन्दनम् ॥६८

मध्याह्ने बलिदानं तु कर्त्तव्यं सुधिया ततः ।
मन्त्रः — ॐ नमो भगवते रावणाय बालकं वदेत्[16] ॥६९
मुंच मुंचाग्निजायांतो मंत्रोयं समुदाहृतः ।
धूपस्नानादिकं सर्वं पूर्वोक्तक्रमतश्चरेत् ॥७०

॥ इति त्रयोदश० ॥

चतुर्दशे दिने मासे वर्षे गृह्णाति बालकम् ।
ताराश्रीयोगिनी नाम ज्वरः शोषोऽरुचिर्भृशम् ॥७१

---

१. घ. ०पिष्टेन । २. घ पुत्रिकां । ३. घ. त्रयोदशश्च । ४. घ. पर्पटिकानपि । ५. घ. प्रज्वलद्धस्तापहनद्वयं शोषयद्वितयं तथा । ६. घ हनेति । ७. वामहस्तेस्यपंकजं । ८. क. ०श्वासो । ९. घ. कायपित्तो विचेष्टित । १०. घ. ०समाश्रित्य । ११. घ. वेत्येनिवेदयेत् । १२. घ. पुष्पा । १३. घ. गुजा । १४ घ अप्रभक्तं । १५. पिताकाश्च । १६. घ. चतुर्दशाक्षिनेस्व ।

[1]चक्षुःपीडेङ्गितं तस्याः पश्चिमे बलिमाहरेत् ।
त्रयोदशप्रकारेण बलिदानादिकं चरेत् ॥७२

॥ इति चतुर्दश० ॥

दशपंचदिने मासे वर्षे गृह्णाति योगिनी ।
[2]श्वासः कासो ज्वरश्चैव दक्षिणस्यां बलिं हरेत् ॥७३

बलिदानादिकं सर्वं त्रयोदशक्रमेण वै ।
धूपादिकं क्रमात्सर्वं चतुर्थोक्तक्रमेण तु ॥७४

॥ इति पंचदश० ।

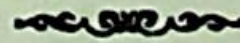
षोडशे दिवसे मासे वर्षे गृह्णाति पूतना ।
कुमारी सपित्तोद्वेगो[3] ज्वरः शोषादिचेष्टितम् ॥७५

नैर्ऋत्यां दिशि संश्रित्य मध्यरात्रे बलिं हरेत् ।
बालं संस्थापयेत्पश्चात् शांतितोयेन मंत्रिणा[4] ॥७६

त्रयोदशप्रकारेण शेषमन्यत्समापयेत् ।
धूपादिकं तु यत्सर्वं[5] चतुर्थोक्तक्रमेण वै ॥७७

॥ इति षोडशदिनमासवर्षगृहीतबालग्रहहरम् ॥

इति श्रीकल्याणेन कृते बालतन्त्रे दिनमासवर्षे बालग्रहोपायकथनं नाम दशमः पटलः ॥



१. क. चतुःपिडांगितां तस्या । २. घ. श्वासं । ३. घ. सर्वतोद्वेगो । ४. घ. मंत्रवित् । ५. घ. तत्सर्वं ।

## एकादशः पटलः

अथातः संप्रवक्ष्यामि बालानां हितकाम्यया
बलि[1] साधारणं चैव ग्रहा[2] रोगास्तथैव च ॥१॥
अथ च[3] पूतना नाम ग्रही गृह्णाति बालकम् ।
तप्तो हिक्कायुतः श्वासी स्तनद्वेषी च कम्पवान् ॥२॥
[4]छर्द्दनं च प्रजायेत निजागर्त्ति संरुदन् ।
स्वापो दिवा रोमहर्षी आस्यशोषः प्रजायते ॥३॥
गुदरोगी च तत्राशु बलिर्देयः प्रशान्तये ।
कृशरान्नं[5] पूर्णकुम्भः सहेमस्तिलचूर्णकम् ॥४
ध्वजो गंधश्च पुष्पाणि धूपदीपावयं[6] बलिः ।
बालानां क्रीडनस्थाने देयो मन्त्रेण मंत्रिणा ॥५

मन्त्रः— नीलाम्बरधरो[7] देवि पूतने विकृताननेे ।
शिशुं विकाराद् मुंचाथ[8] प्रगृह्णीष्व बलिं त्विमम् ॥६

**इति श्रीबालतंत्रे षोडशवंध्यावीर्यवृद्धि-गर्भाधानकाल-रुद्रस्नानगर्भिणीरक्षा-प्रसवोपाय-बालग्रहर, मासग्रहहररक्षादिना मास-वर्ष-ग्रहरक्षा-बालग्रहोपायं समाप्तम् ॥**

ग्रन्थान् विलोक्य प्रचुरप्रयोगान् पद्यैःस्वकीयैः कतिचित्तदीयैः ।
प्रोक्ता चिकित्सा[9] रुचिरा शिशूनां तां देशकालादि समीक्ष्य कुर्यात्॥१
अहिछत्रान्वये जातः पण्डितैकशिरोमणिः ।
रामचन्द्रार्चनरतो रामदासः सतां प्रियः ॥२
विद्वज्जनाल्हादकरो मनस्वी महीधरः सर्वजनाभिवंद्यः ।
लक्ष्मीनृसिंहांघ्रिसरोजभृंगस्तदात्मजोऽभूद्विदितागमार्थः ॥३
कल्याण इत्यु(दग्)दगतनामधेयस्तदात्मजो ग्रंथवरान्विलोक्य ।
परोपकाराय बबंध तंत्रं सतां समालोकनयोग्यमेतत् ॥४
युगवेदरसाकालमिते वर्षे नभे रवौ ।
पूर्णिमायां चकारेदं लिलेख च शिवालये ॥५

**इति श्रीकल्याणेन कृते बालतंत्रे नाना प्रयोगकथनं नाम एकादशः पटलः । समाप्तोऽयं ग्रंथः । लिखितं लक्ष्मीनारायणेन भक्तावरस्य पठनार्थं ॥**

**फाल्गुन शुक्ला १ प्रतिपदि रविवासरे सं० १९२८ शाके १७९३ श्री**

---

१. क. बलि । २. घ ग्रह । ३. घ. अथ । ४. क. छर्द्दनं । ५. क. कृशशन्नं । ६. घ. धूपदीपादियं बलिम् । ७. घ. धरा । ८. घ. मुंचाथ । ९. क. निकंछा ।

॥ अथ महापूतनास्य(ख्य) ग्रहहरं ॥

ताडितः संप(य)तस्तूष्णी प्रपतेदमुम् ॥७
बालं महापूतनास्य(ख्या) गृह्णाति च ततो ज्वरः ।
जार्गत्ति च दिवारात्रं स्तनं भुक्ते च सत्यपि ॥८
कासश्वासाक्षिरोगं च पूतिगंधः प्रजायते ।
अन्नं मांसं च रक्तं च गंधः पुष्पाणि वाससी ॥९
धूपदीपौ हिरण्येन युक्तः पूर्णघटस्तथा ।
स्नुहीवृक्षस्य मूले तु बलिं मंत्रेण निक्षिपेत् ॥१०
मंत्रः— कराले चंडिका मूले कषायाम्बरधारिणी ।
रक्षामुं पूतना देवी प्रगृह्णीष्व बलिं त्विमम् ॥११

॥ अथोर्द्ध्वपूतना ॥

लोमादिना तु यः कुर्य्यात्तिरस्कारं वरैर्नरैः ।
तेषामूर्द्ध्वपूतनाख्या बालं संक्रमते ग्रहः ॥१२
ततो ज्वरो वाक्षिरोगी सनिद्रश्च दिवा भवेत् ।
विनिद्रोऽपि निशायां तु कासयुक्तश्च जायते ॥१३
अन्नं मांसं च रुधिरं वस्त्रं रक्तं च चन्दनम् ।
सहिरण्यः पूर्णकुम्भस्तु स्नुहीमूले निशामुखे ॥१४
मंत्रः— त्वमूर्द्ध्वपूतने देवि प्रगृह्णीष्व त्वमुं बलिम् ।
शिशुविकारान्मुंचाद्याश्रुनेत्रे रक्तदर्शने ॥१५॥

॥ अथवा बालकांग्रहहरं ॥

रि(ऋ)तौ स्वरावागमनं कृत्वा स्नानादिवर्जितः ॥१६
अरितौसौ हिनस्तु स्वप्ने जन्मान्तरे तु तम् ।
वाल्ये ग्रहे संक्रमते स्वपे जन्मान्तरे तु तम् ॥१७
बाल्ये ग्रहे संक्रमते बालकाख्यो महाग्रहः ।
ततः पक्षाभिघाती स्याद्रक्तनेत्रश्च जायते ॥१७
पायसं सक्तवो मेषकुर्कुटच्छागलोहितम् ।
रक्तवस्त्रं रक्तगंधं रक्तपुष्पाणि चैव हि ॥१८
धूपदीपौ हिरण्येन युक्तः पूर्णघटस्तथा ।
एतद्वटस्य मूले वा यवक्षेत्रेऽपि वा क्षिपेत् ॥१९

मंत्रः— प्रगृह्णीष्व बलिं चेमं बालकान् स महाग्रहम् ।
शिशुविकारान्मुञ्चाद्य कुमारस्य प्रियप्रभो ॥२०

॥ अथ रेवती ॥

रेवती बालकं नाम्नी ग्रहः संक्रमते शिशुम् ।
भूषणैर्बहुभिर्युक्तं गंधादिभिरलंकृतम् ॥२१
अथवा स्त्रीधनग्राहि कुटनाथ (कुटुम्बादि) वृते बलात् ।
यस्तं जन्मान्तरे बाल्ये ग्रही गृह्णाति रेवती ॥२२

हरिद्राच्छागविण्मूत्रपीतस्फोटि च जायते ।
अग्निदग्धाकृतिस्फोटभवच्छर्द्या ततः पुनः ॥२३

पयसाऽपूपलाजांश्च सक्तवो गंध एव च ।
पुष्पाणि धूपदीपौ च मांसं कांचनगर्भितः ॥२४

पूर्णकुम्भश्च नद्यां वा गोष्ठबाह्यं विनिक्षिपेत् ।
मंत्रः— चित्राम्बरधरे देवि चित्रमाल्यानुलेपने ॥२५

चलकुण्डलरंडाद्ये रेवती मंडलप्रिये ।
अलंकारप्रिया देवी मातृकाग्रहरूपिणी ॥२६

शिशुविकारान्मुंचाद्य रेवती मातृका ग्रही ।
प्रगृह्णीष्व बलिं चेमं रेवति प्रियभूषणैः ॥२७

॥ प्रकारान्तरेण रेवती ॥

संध्याकाले शयानं तमुच्छिष्टं मुक्तमूर्द्धजम् ॥२८
रेवत्याख्या संक्रमते तत्क्षणाद्बालकं ग्रहः ।
आस्यशोषो भवेत्तस्य दाहः कंपश्च [जायते] ॥२९
कृष्णवर्णश्च जायते बलिर्देयः प्रशान्तये ।
लाजाश्च पायसं सर्पिः कुक्कुटो मेष एव च ॥३०
रक्तवस्त्रं रक्तगंधः पूर्णकुम्भः सकांचनः ।
वटस्य मूले शम्या वा प्रदोषे निक्षिपेद्बलिम् ॥३१
मंत्रः— चित्राम्बरधरे देवी चित्रमाल्यानुलेपने ।
शिशुविकारान्मुंचाद्य रेवति त्वं महाग्रहे ॥३२

॥ अथ पुष्परेवती ॥

भूमौ शयानं संध्यायां निद्रितं पुष्परेवती ।
गृहे संक्रमते बालं तेनाङ्गं शीतता भवेत् ॥३३

आस्यशोषं च दाहश्च कृष्णपादांगुलीषु[1] च ।
नखेषु[2] कृष्णवर्णत्वं दातव्यं शांतये बलिम् ।।३४
मधुयुक्तं पायसं च गन्धपुष्पाणि वा शशिः ।
धूपदीपौ हिरण्येन युक्तः पूर्णघटस्तथा ।।३५
सुपुण्यायतने क्वापि बलिमंत्रेण निक्षिपेत् ।
मंत्रः— पुष्पाख्यरेवती देवी प्रगृह्णीष्व बलिं त्वमुम् ।।३६
बालकस्य सुखं सिद्धि प्रयच्छ त्वं वरानने ।

।। अथ शुष्करेवती ।।

भूमौ निपतितं बालं रुदन्तं छर्दिनं तथा ।।३७
अप्रक्षालितगात्रं च गृह्णीयाच्छुष्करेवती ।
ततो ज्वरमुखशोषहृच्छोष्यापि च शूल्यपि ।।३८
शिरोरोगार्तिभूतश्च तज्जीर्णेन युतो भवेत् ।
मुद्गाभं श्वेतपुष्पाणि श्वेतवस्त्रं च चन्दनम् ।।३९
धूपदीपौ पुष्पहृत् वृक्षमूले बलिं हरेत् ।
मंत्रः— शुष्काख्यरेवती देवि प्रेतरूपे यशस्विनी ।।४०
करालवदने घोरे प्रगृह्णीष्व बलिं त्विमम् ।

।। अथ शकुनिग्रहहरम् ।।

उच्छिष्टभोजनं देवालयमूत्रादिकारणम् ।।४१
शकुनिर्नाम गृह्णाति ततो जागर्त्ति वै निशि ।
मुखे कंठ अपाने च व्रणातिसारवान् भवेत् ।।४२
ज्वरी कृष्णच्छविर्वातिरोगी भवति बालकः ।
आममांसं पक्वमांसं हरिद्रान्नं पयो घृतम् ।।४३
तिलपिष्टं तथापूपा वस्त्रगंधादिकं तथा ।
हिरण्यसहितः कुंभः श्मशाने निक्षिपेद् बलिम् ।।४४
मंत्रः— प्रगृह्णीष्व बलिं चेमं शकुन्याख्या महाग्रहि ।
शिशुं विकारान्मुंचाद्य सुभगे कंसरूपिणी ।।४५

।। अथ शिशुमुंडिक ।।

नित्यकर्मविहीनानां पोषकानां च पक्षिणाम् ।
जन्मान्तरे संक्रमते बालकं शिशुमुंडिका ।।४६

---

१. पुंग । २ नखेषु ।

ततो रोदति पाणि च पादौ चाक्षिणी कंपते ।
वामे ज्वरी च जायेत अत्र हार्यो बलिस्ततः ।।४६

हरिद्रान्नं तिलान्नं च मिष्टं चापूपपूपिकाः ।
सर्पिर्मधु दधि क्षीरं गन्धपुष्पाणि वाससी ।।४८

धूपदीपौ हिरण्येन युक्तः पूर्णघटस्तथा ।
पुरातनवटाभ्यर्णे निक्षिपेत्मंत्रतो बलिम् ।।४६
स्वलंकृतस्वरूपे त्वं भवन्ति शिशुमुंडिके ।
शिशुं विकारान्मुञ्चाद्य चंडिके च त्रिविक्रमे ।।५०

।। इति शिशुमुडिकाग्रहहरम् ।।

अथ सामान्यतो बालग्रहाविष्टे चेष्टोद्वर्तनस्नानधूपमन्त्राः—

नखदन्ता विकारि स्यान्निद्राहीनोऽथवा भयोद्वेगी ।
दुर्गन्धो विचेष्टो वालो वालं ग्रहाविष्टः ।।५१
दुर्वासतिक्ताविषमच्छदत्वक्प्रोद्वर्त्तनाद्धन्ति शिशुग्रहार्तिम् ।
सप्तच्छदाश्वत्थमधूकसेलूपत्रक्काथोभस्नापनाच्च शीतात् ।।५२
वंशत्वग्गजसंयुतं सलशुनं सारिष्टपत्रे घृतम्,
निर्माल्यं (नर)केशसर्पितु रगत्वग्गोरराजीयुतम् ।
सिद्धार्थं जतुनिंबपत्रसहितै वंशत्वगाज्यान्वितं,
धूपानां त्रयमेतदाशु सकलान्बालग्रहान्नाशयेत् ।।५४

प्रणवं शंखेश्वरमायासं च वदेत्ततः ।
खगेश्वर ततो लूनां कर्षणं कर्षणं वदेत् ।।५५
वह्निजायावधिमंत्रो विलेपनविधो स्मृतः ।
अथाहं संप्रवक्ष्यामि अभिषेके वरं मनुम् ।।५६
प्रणवं सर्वशब्दान्ते मातरेति पदं वदेत् ।
इमं ग्रहं संहरन्तु हुँ रोदय च रोदय ।।५७
स्फोटयद्वितयं गृह्णाद्वयमामर्दयद्वयम् ।
शीघ्रं हनद्वयं प्रोच्य एवं सिद्धो वदेत्ततः ।।५८
रुद्रो ज्ञापयति स्वाहा स्नापने तु समीरितः ।
बालकस्य शिखां स्पृष्ट्वा जप्तः सर्वग्रहान् हरेत् ।।५६

खुखुर्दन समुच्चार्य खे हुं फट् वन्हिवल्लभा ।
नवार्णोयं समाख्यातो धूपने सर्वकर्मसु ॥६०

मन्त्रः— रक्ष रक्ष महादेव नीलग्रीवो जटाधरः ।
ग्रहैस्तु सहितो रक्ष मुंच मुंच कुमारकम् ॥६१
भूर्ये मंत्रममुं लिख्य गुलिकां कृत्वोपबंधयेत् ।
भुजे बाल्याभिरक्षार्थे सर्वग्रहहरं परम् ॥६२
पालासोदुम्बराश्वत्थबिल्वन्यग्रोधपल्लवैः ।
क्वथितेन कषायेन परिषिंचेत्प्रशान्तये ॥६३
प्रणवं मुंच मुंचेति एक एक जयद्वयंच[1] ।
आगच्छ बालिके न च संवदेत् ॥६४
वन्हिजायावधिर्मंत्रः सर्वग्रहविमोचनः ।
जपे होमे तर्प्पणे च बालकस्य सुखावहः ॥६५

तारं लुयुग्ममुदवकं सिरमभिरणे,
शक्ति वृहता च शिशुं नामवतिशशांकौ ।
अर्द्धेन्दुवहिरधो वदनोपरि तौ,
यंत्रं तदाशु शिशुरोदनमुक्षिणोति ॥६६

षट्कोणमध्ये प्रविलिख्य मायां नामान्वितां चन्द्रयुगेन खीलाम् ।
षट्कोणमध्ये तु परक्षराणि चन्द्रैर्युतं यंत्रमिदं त्वपूर्णैः ॥६७

इति कल्याणेन कृते बालतंत्रे साधारणो नाम एकादशः पटलः ॥

## द्वादशः पटलः

विदो विदार्याः पयसा प्रपीतस्तत्स्तन्यवृद्धि विदधाति सद्यः ।
गोधूमयूषः सह गोघृतेन तद्वत्प्रदिष्टं सितया समेतः ॥१
मागधिकायाः कर्षं सप्ताहं या पयःप्रष्टम् ।
सुवर्णपयोधराम्भौ तस्या भवतः पयोधरौ नियतम् ॥२
प्रजातिकर्षं पयसा प्रदिष्टं या सेवते सप्तदिनानि नारी ।
तस्याः कुचौ संततदुग्धपूर्णौ कुमारपुष्टिं कुरुतः सुखेन ॥३

१. 'एव च द्वयं' इत्यपि पाठः ।

पिप्पल्यरजोभिर्ग्रहधूमरजोयुतैः कृतायुषा ।
असिततिलतैलसहिता भुंक्ते स्त्रीणां पयो जनानाम् ॥४

कुक्कुरमर्दकमूलं सुविधिहुतं वदनमध्यगतं नार्याः ।
सततं स्वितं दशाहात्प्रभूतदुग्धप्रदं भवति ॥५

क्षीरान्नादाभवेत्क्षीरं मधुरद्रव्यसाधितम् ।
क्षीरसंजननं नार्याः प्रयत्नेन दिनत्रये ॥६

पथ्यं तंदुलरजसपयस्कं या पिबत्यनुदिनं सघृतेन ।
दुग्धं भक्तमशनं विदधाना सा क्षरत्यत्रिरतं बहुदुग्धम् ॥७

वनकर्पासिकेक्षणां मूलं सौरकेन वा ।
विदारिकंदस्वरसं पिबेद्या स्तन्यवर्द्धनम् ॥८

शालिषष्टिकगर्भेक्षकुसकासमलान्वितम् ।
गुदेक्षवास्तुकामूलं दशैते स्तन्यवर्द्धनाः ॥९

॥ इति स्तन्यप्रवर्द्धने (नम्) ॥

यथोक्तां कारयेद्धात्रीं नवयौवनसंस्थिताम् ।
शुचिर्नं(म) रोगामकृशां जीवद्वत्सामलंकृताम् ॥१०

मध्यप्रमाणां श्यामाङ्गीं विशेषात् शीलशोभिताम् ।
कुलजां तुङ्गकुचां दोग्ध्रीं शुद्धचित्तामलोलुपाम् ॥११
शुचिदेहां हासवक्त्रां वत्सलां ग्रहवर्जिताम् ।
स्तन्यमस्याः परीक्षेत स्तस्या नाह्वयकोविदः ॥१२
शुद्धे स्तन्ये न रोगः स्यादन्यथा रोगसम्भवः ।
शीतत्वं विमलं क्षिप्तमेकीभावं जलं व्रजेत् ॥१३॥
वचा भिद्यति तत्सिद्धं स्तन्यफेनाविवर्जितम् १४॥
अथवैतस्य बालस्य कश्चिद्रोगो न जायते ।
अथवा मातुरेवास्य स्तन्यं शुद्धं प्रदापयेत् ॥१५
मिथ्याहारविहारिण्यो दुष्टा वातोदस(राः)स्त्रियः ।
दुःखयंति पयस्वेन बाले रोगस्य संभवः ॥१६
तस्मात्प्रयत्नतो धात्र्यः प्रथमं क्रान्ततो हि तम् ।
अस्याश्च मनसा कष्टं कदाचिन्नैव कारयेत् ॥१७

॥ इति धातृलक्षणम् ॥

अमृता सप्तपर्णं च क्वाथः स्तन्यस्य शुद्धये ।
पाययेदथवा पाठाद्युक्तं निक्वाथरोहितम् ॥१८

भूनिम्बपाठामधूकं निक्वाथ्य तोयेन कणार्द्धचूर्णम् ।
प्रक्षिप्य पीतं शिशुरोगशान्ति दुग्धस्य शुद्धि च करोति सद्यः ॥१६

पंचकोलमधुकैः सकुलत्थैर्विल्वमूलतगरैः कुचलेपः ।
आदितो हितकरो बहुवारं दुग्धशुद्धिभयमाशु विद्यते ॥२०

पाठारसाञ्जनं मूर्वा सुरदारुप्रियंगवः ।
एभिः स्तन्यकृतो लेपः स्तन्यशुद्धिकरः परः ॥२१

पयसा मधुकं द्राक्षा सिन्धुवारहिमाम्बुना ।
पीतस्तन्यस्य वैवर्ण्यं पतिगंधहरं मतम् ॥२२

मुस्तं पाठा शिवं कृष्णा चूर्णं दुग्धेन पाययेत् ।
एतेन सहसा शुद्धिः ध्रुवं स्तन्यस्य जायते ॥२३

त्रायमाणामृतानिंबपटोलैस्त्रिफलान्वितैः ।
स्तन्यः प्रलेपितः शीघ्रं स्तन्यशुद्धिः प्रजायते ॥२४

पूर्वमालेपनं कार्यं तस्मिञ्शुष्कत्वमागते ।
स्तनोऽतिदुग्धो विधिना पाययेद्बालकं ततः ॥२५

॥ इति स्तन्यशुद्धिः ॥

अथ रोगाम् परीक्षेत रोदनान् मुखवर्णतः ।
स्तन्याकर्षणतश्चापि ततः कुर्याच्चिकित्सितम् ॥२६

मात्रया लंघयेद् धात्रीं शिशोर्नेष्टं विशेषणम् ।
सर्वं निर्वायिते बाले क्वचित्स्तन्यं न वारयेत् ॥२७

वातेन ध्मापितं नाभिं सरुजां तुण्डसंज्ञिताम् ।
मारुताद्यैः प्रशमयेत्स्नेहस्वेदोपतापनैः ॥२८

मृत्पिण्डेनाग्निवर्णेन क्षीरासिक्तेन सोष्मणा ।
स्वेदयेदुच्छ्रितां नाभिं शोफस्तेनोपशाम्यति ॥२६

दुग्धेन छागस(श)कृता नाभिपाकेन चूर्णकम् ।
त्वक्पर्णैः क्षीत(रं)स(श)स्तमथ चन्दनरेणुना ॥३०

नाभिपाके निशालोध्रप्रियङ्गुमधुकैः सृतम् ।
तैलमभ्यञ्जने शस्तमेभिर्वाप्यवचूर्णितम् ॥३१

बालोऽयं चिरजातः स्तन्यं गृह्णाति नाभितस्तस्यास्तु ।
सैन्धवं च धात्री मधुघृतपथ्याकंरजकेन घर्षयेज्जिह्वाम् ॥३२

गुदपाके तु बालानां पित्तघ्नीं पातयेत्क्रियाम् ।
रसांजनं विशेषेण पानालेपनयोर्हितम् ॥३३

जात्या प्रवालकुसुमानि समाक्षिकानि,
योज्यानि बालकजनस्य मुखप्रपाके ।
गुदस्य च रसांजनलोध्रचूर्णं,
योज्यं भिषग्भिरुपदिष्टमिदं शिशूनाम् ॥३४

आम्रसाररजसा सह शस्तं जातिना समुदितो मुखपाकः ।
गैरिकेण मधुनाथ च सर्वा श्वेतसारखदिरांजनयोगैः ॥३५

विशेषबालकं स्नेहैरभ्यंगं समुपाचरेत् ।
कोष्णेन पयसा स्नानं ततः कुर्व्वीत कालवित् ॥३६

दुष्टग्रहागृहीतानां नृणां नेष्टं तु दर्शनम् ।
विशेषाद्रक्षयेद् दृष्टिं दोषं रक्षादिभिः शिशौ ॥३७

॥ इति नाभिगुदमुखपाकचिकित्सा ॥

[1]मुस्तत्रयानिम्बपटोलयष्टिकाथः शिशूनां ज्वरनाशकारी ।
तद्वद्गुडूचीविहितश्च सारः सुप्रत्ययोऽयं मधुनावलीढः ॥३८।३९

सितामधुभ्यां कटुकावलीढे साध्मानमुग्रं ज्वरमाशु हन्यात् ।
तत्कल्कलेपश्च कृतः शिशूनां मुहुर्मुहुर्दोषविनाशहेतुः ॥४०

क्वाथः कृतः पद्मकर्निबधान्यछिन्नोद्भवावालकचन्दनेन ।
ज्वरं जयेत्सर्वभवं कृशानुः धात्री शिशूनां प्रकरोति पीतः ॥४१

अमृतैका जले पाच्यामाष्टकमिव स्थितिः ।
शिशूनां शमयत्याशु सर्वदोषभवं ज्वरम् ॥४२

यष्ठिमधुतुगाक्षीरीलाजांजनसिताकृतः ।
लेहः प्रदत्तो बालानामशेषज्वरनाशनः ॥४३

---

१. 'मुस्तं च भूनिम्ब०' इत्यपि पाठः ।

क्वाथः स्थिरागोक्षुरविश्ववालक्षुद्राब्दकच्छिन्नरुहाकिरातैः ।
वातज्वरं संशमयेत्प्रपीते वाले च धात्र्या च कृशानुकारी ॥४४

पंचमूलकृतः क्वाथः पीतो वातज्वरापहः ।
तद्वच्छिन्नरुहाद्राक्षागोपकन्यावलाभवम् ॥४५

गुडूचीसारिवोशीरचन्दनोत्पलपद्मकैः ।
यष्टीमधुककाश्मर्यधान्यकैर्विहितो जयेत् ॥४६

सारिवोत्पलकाश्मर्य्यछिन्नापर्वतपर्पटैः ।
क्वाथः पीतो निहन्त्याशु शिशूनां पित्तजं ज्वरम् ॥४७

मुस्तापर्पटकोशीरसारिवापद्मसाधितम् ।
शीतवारि निहन्त्याशु तृष्णादाहवमिज्वरान् ॥४८

मधुकं चंदनं द्राक्षा धान्यकं सदुरालभा ।
एतैः क्वाथः कृतो हन्याद् वातदाहे ज्वरापहः ॥४९

मुस्तकं चन्दनं वासा ह्रीवेरं यष्टिकामृता ।
एषां क्वाथस्तु पित्तघ्नस्तृषादाहज्वरापहः ॥५०

वासापर्पटकोशीरनिंबभूनिंबसाधितः ।
क्वाथो हन्ति वमिश्वासकासपित्तज्वराञ्जयेत् ॥५१
अभयामलकी कृष्णा त्रितयोयं[1] गणो मतः ।
दीपनः पाचनो भेदी सर्वश्लेष्मज्वरापहः ॥५२
कट्फलं पुष्करं शृंगी पिप्पली मधुना सह ।
एष लेहो ज्वरं श्वासं कासं मन्दानलं जयेत् ॥५३
कटुकं कट्फलं शृंगी पुष्करं पिप्पली नलः ।
समस्तान्येकशो वापि द्विशो वापि भिषग्वरः ॥५४
एतान् चूर्णीकृतान् दद्यात् मध्वार्द्रकरसप्लुतान् ।
कफज्वरारुचिश्वासछर्दिशूलानिलापहन् ॥५५

क्षौद्रोपकुल्यासंगस्तु श्वासकासज्वरापहः ।
प्लीहानं हंति हिक्कां च बालानां तु प्रशस्यते ॥५६

---

१. 'त्रिके योयं' इत्यपि पाठः ।

पिप्पली मुस्तकं शृंगी विषा मधुयुतं समम् ।
कासश्वासज्वरं हन्यात् शिशूनां चतुरामृतम्[1] ॥५७

मधुकं सारिवा द्राक्षा मधुकं चन्दनोत्पलम् ।
काश्म(श्मी)री पद्मकं लोध्रं त्रिफलापयकेशरम् ॥५८

परुषकं च मृणालं च न्यसेदुत्तमवारिणी(णि) ।
मधुलाजासितायुक्तं तत्पीतं मुषितं[2] निशि ॥५९

वातपित्तज्वरं दाहं तृष्णामूर्च्छारुचिभ्रमान् ।
शमयेद्रक्तपित्तं च जीमूतमिव मारुतः ॥ ६०

कैरातो जलदा छिन्ना पंचमूली लघुस्तथा ।
एषां कषायो हंत्याशु वातपित्तोत्तरं ज्वरम् ॥६१

मुस्तापर्पटके छिन्ना किरातं विश्वभैषजम् ।
एषां कषायो दातव्यो वात्तपित्तज्वरापहः ॥६२

उशीरं मधुकं द्राक्षा काश्मीरी नीलमुत्पलम् ।
परूषकं पद्मकं च मधुकं मधुकं बला ॥६३

अभिशीतकषायोऽयं वातपित्तज्वरं जयेत् ।
प्रलापमूर्च्छासंदाहतृष्णापित्तज्वरापहः ॥६४

त्रिफला पिचुमंदश्च पटोलं मधुकं बला ।
एभिः क्वाथः कृतः पीतः पित्तश्लेष्मज्वरापहः ॥६५

अमृतेन्द्रयवारिष्टपटोलं कटुरोहिणी ।
नागरं चन्दनं मुस्तं पिप्पलीचूर्णसंयुतम् ॥६६

अमृताष्टकमित्येतत्पित्तश्लेष्मज्वरापहम् ।
हृल्लासारोचकच्छर्दितृष्णादाहनिवारणम् ॥६७

मुस्तामृतापर्पटपुष्कराब्दैः पटोलधान्याककिराततिक्तैः ।
सचन्दनोशीरबलाजलाख्यैः क्वाथः परं पित्तकफज्वरघ्नः ॥६८

हृल्लासतृष्णे मोहश्चारुचिर्दाहश्च छर्दनम् ।
पार्श्वव्यथावंधहारिप्रयोगोऽयं सुशोभनः ॥६९

---

१. कफज्वरे चतुरामृतगुटी(सं०) । २. पुष्टिदं ।

धान्यकचन्दनपद्मकमुस्ताशक्रयवामलकैः सपटोलः ।
शीतकषायमुखे खलु दद्याद्बालकपित्तकफज्वरहं तु ॥७०

वासारसौ क्षौद्रसितासमेतौ ज्वरं हरेत्पित्तबला सजातम् ।
सश्वासकासश्च वमिं सदाहं सकामलं हन्ति सरक्तपित्तम् ॥७१

आरग्वधः सातिविषः समुस्तातिक्तः कषायो ज्वरमाशु हन्यात् ।
सामं सशूलं सवमिं सदाहं साध्मानवंधं सकफं सवातम् ।७२

किरातं तिक्तकं मुस्तं गुडूची विश्वभैषजम् ।
चातुर्भद्रकमित्याहुर्वातश्लेष्मज्वरापहम् ॥७३

मुद्गतंडुलसंसिद्धं कट्फलैर्वमिकुष्ठकैः ।
पथ्यमंत्रमिदं दद्याद्यूषं वातकफज्वरे ॥७४

दशमूलकृतः क्वाथः पिप्पलीचूर्णसंयुतः ।
संमोहतन्द्रां शमयेत् सन्निपातज्वरं परम् ॥७५

छिन्ना सठी पुष्करमूलतिक्ताः शृंगी सपाठामृतवानरीभिः ।
दुरालभाविश्वकिरातितिक्ताः समस्तदोषज्वरहृद्गणोऽयम् ॥७६

भूनिम्बदारुदशमूलमहौषधाब्द तिक्तेन्द्रबीजघनिकेभकणाकषायः ।
तन्द्राप्रलापकसनारुचिदाहमोहश्वासादियुक्तमखिलं ज्वरमाशु हन्ति॥७७

वासाव्याघ्रीकणालेहः शीतज्वरविनाशनः ।
तद्वत्क्षुद्रामृतानंततिक्ता भूनिम्बसाधिता ॥७८
गुडूचीविहितः क्वाथः कणाचूर्णसमन्विता ।
एकाहिकज्वरं हन्ति कासश्वासादिदूषितम् ॥७९
द्राक्षापटोलत्रिफलापिचुमदवृषैः कृतः ।
क्वाथः एकाहिकं हन्ति परार्थमिव दुर्जनम् ॥८०
आमंत्र्य पूर्वं शुचि निगृहीतं मयूरमूलं वरकोष्ठवध्याम् ।
प्रार्तदिने शस्यदिने निहन्यादेकाहिकं शोणितमूत्रबधम् ॥८१
मिष्टतैलप्लुतं कृत्वा कज्जलं तेन कारयेत् ।
तेनांजिताक्षः क्षिप्रेण हन्यादेकाहिकं ज्वरम ॥८२

---

१. हृत्वा दिनेशदिवसे मार्जन्या गृहमर्कटी ।
कुमारीकृतसूत्रेण वेष्टयेद्वर्त्तिसम्भवम् ॥

ज्वरं तु नाभिषंगोत्थं रक्षामंत्रादिभिर्नयेत् ।
विषघ्नौषधयोगेन विषोत्थमपि बुद्धिमान् ।।८३
निम्बपत्रामृतानंतापटोलेन्द्रयवैः कृतम् ।
क्वाथं सततकं हन्यात् सुप्तभूव्यसनं यथा ।।८४
गुडूचीचन्दनोशीरधान्यनागरतोयदैः ।
क्वाथस्तृतीयकं हन्यात्शर्करामधुमिश्रितम् ।।८५
एकशो वचा कुष्टं गजचर्म विचर्म च ।
निंबस्य पत्रं माक्षीकं सर्पिर्युक्त तु धूपनम् ।।८६
ज्वरवेगं निहन्त्याशु बालानां तु विशेषतः ।
सर्प्पित्वक्सिसपारिष्टपल्लवास्तेजनी वचा ।।८७
रसोनहिंगुलवणैः शृंगिमिरचमाक्षिकैः ।
धूपः सर्वग्रहघ्नोत्थं कुमाराणां ज्वरापहः ।।८८
निर्मोकामरदारुहिंगुमरिचारिष्टच्छदं माक्षिकं,
निर्माल्ये नरकेशसर्षपवचां गंधारसोनः शिलाः ।
यष्टिर्गुग्गुलकुष्टपिच्छलवणं मार्जारविष्टाघृतं,
सर्जो रुद्रजटार्कपत्रनलदं पंचेषुपूर्वं फलम् ।।८९
निम्बकुष्टवचायष्टी(कुष्टि)सिद्धार्थकफलं कषैः ।
सर्पिर्लवणसर्पकंचुयवैर्धूपो ज्वरापहः ।।९०
निर्गुण्ड्या सहदेव्याश्च कटौ बद्धं जटाद्वयम् ।
प्रातरादित्यवारे च सर्वज्वरविनाशकृत् ।।९१
कन्यार्कातसूत्राणि बद्धापामार्गमूलिका ।
एकाहिकं ज्वरं हंति शिखायामपि वेगतः ।।९२
कर्णौ बद्ध्वा रवौ श्वेततुरंगरिपुमूलिका ।
सर्वज्वरहरा श्वेतमंदारस्य च मूलिका ।।९३
काकमाचिसिफाकर्णे वस्त्रं रात्रिज्वरापहम् ।
पाणिस्थं वृकवृन्दाकं युते वितनुते जयम् ।।९४

।। इति श्रीकल्याणेन कृते बालतंत्रे ज्वरहरणोपायकथनं नाम द्वादशः पटलः ।।

## त्रयोदशः पटलः

लोध्रं समं(गं)गाजलधातुकोभिः समानि वाभिर्विहितः कषायः ।
बालातिसारं सहसा निहन्यादेकाथ मुस्ता मधुनावलीढा ॥१
बिल्वं च पुष्पाणि च धातुकीनां जलं सलोध्रं गजपिप्पली च ।
क्वाथावलेहो मधुना विमिश्रौ बालेषु योज्यावतिसारते(के)षु ॥२
मुस्ताविषाशक्रयवाच्छमिश्रैः शिशोरतीसारहरः कषायः ।
आम्रातिकल्कस्वरसश्च तद्वद् वृद्धिद्वयं वा मधुना च लीढा ॥३
नागरातिविषा मुस्ता कुटजैः क्वथितं जलैः ।
प्रातः पीतं कुमाराणां शीघ्रं सर्वातिसारजित् ॥४
पिष्ट्वा पटोलमूलं च शृंगवेरवच मपि ।
विडंगान्याजमोदा च पिप्पलीतण्डुलान्यपि ॥५
एतान्यालोड्य सर्वाणि सुखतप्तेन वारिणा ।
आमप्रवृत्तेऽतीसारे कुमारं पाययेद् भिषक् ॥६
नागरातिविषामुस्ताक्वाथः स्यादामपाचनम् ।
विषं वा सगुडं लीढं मधुनाऽऽमहर परम् ॥७
मुस्तं मोचरसा पाठा बिल्वं लोध्रं सनागरम् ।
तक्रेण पीतं दुर्वारं शिशौ हन्त्युदरामयम् ॥८

॥ इति अतीसारः ।

हरिद्राद्वययष्टचाह्वसिंहीशक्रयवैः कृतः ।
शिशोर्ज्वरातिसारघ्नः कषायः स्तनदोषजित् ।
धानकृष्णारुणाशुंठीचूर्णं क्षौद्रेण योजितम् ।
शिशोर्ज्वरातिसारघ्नं कासश्वासवमिं जयेत् ॥१०
धातुकीबिल्वधान्याकलोध्रेन्द्रयववालकैः ।
लेहः क्षौद्रेण बालानां ज्वरातीसारवान्तिहृत् ॥११

॥ इति ज्वरातीसारः ॥

यवानी जीरकं व्योषं कुटजं विश्वभैषजम् ।
एतन्मधुयुतं लीढं बालानां ग्रहणीं जयेत् ॥१२
पिप्पलीविजयाशुंठीचूर्णं मधुयुतं भिषक् ।
दत्वा निहृत्य ग्रहणीरुजां नियतिमाप्नुयात् ॥१३

कृष्णा महौषधं मुस्तं कुटजस्य यवानिकम् ।
मधुसर्प्पिर्युतं लीढं वातजां ग्रहणीं हरेत् ॥१४

नागरं मुस्तकं विल्वं चित्रकं ग्रंथिकं शिवा ।
चूर्णमेतन्मधुयुतं कफजां ग्रहणीं जयेत् ॥१५

सगुडं नागरं बिल्वं यं खादति हि नाशनः ।
त्रिदोषग्रहणीरोगान्मुच्यते नात्र संशयः ॥१६

मुस्तकातिविषं बिल्वं चूर्णितं कोष्ठजं तथा ।
क्षौद्रेण लीढ्वा ग्रहणीं सर्वदोषोद्भवां जयेत् ॥१७

॥ इति संग्रहणी ॥

यवानी नागरं पाठा दाडिमं कुटजं तथा ।
चूर्णोऽयं गुडतक्राभ्यां पीतोऽर्शशमनः परः ॥१८

अजाजी पुष्करं पाठा त्र्यूषणं दहनं शिवा ।
गुडेन गुटिका ग्राह्या सर्वार्शोनाशि निर्मिता (नी मता) ॥१९

नवनीततिलाभ्यासात्केशरनवनीतशर्कराभ्यासात् ।
दधिसारमथिताभ्यासात् गुडजा शाम्यति रक्तवहा ॥२०

कैंकटक्षं कौटजं बीजं केशरं पद्मकेशरम् ।
एतन्मधुयुतं लीढं रक्तार्शोनाशनं परम् ॥२१

एवं वा कौटजं बीजं रक्तार्शो मधुना हरेत् ।
तद्वन्मुस्तामोचरसकपित्थच्छदजो रजः ॥२२

॥ इति अर्शः ॥

धान्यनागरजःक्वाथः शूलामाजीर्णनाशनः ।
पूर्णशुक्रयुतः[1] पीतस्तद्वद्दोषाग्निजीरकैः ॥२३

पिप्पली रुचकं पथ्या चूर्णं मस्तुजलं पिबेत् ।
सर्वाजीर्णहरः शूले गुल्मानाहा(म)ग्निमांद्यजित् ॥२४

(त्रि)त्वक्पत्ररास्नागुरुशिग्रुकुष्ठैर(र)म्लप्रपिष्टैः सवचाशताह्वैः ।
उद्वर्त्तनं पल्लिविषूचिकाघ्नं तैलं विपक्वं च तदर्थकारी ॥२५

॥ इति अजीर्णविषूचिका ॥

---

१. क्वचित् 'पूर्णस्तत्र शुभ' : ।

अभयानंगुरुस्निग्धैर्मंदसांद्रहिमस्थितैः ।
पित्तघ्नै रेचनैर्द्धीमान् भस्मकं प्रशमं नयेत् ॥२६

औदुम्बरं त्वचं पिष्ट्वा नारीक्षीरयुतं पिवेत् ।
ताभ्यां च पायसं सिद्धं मुक्तं जयति भस्मकम् ॥२७

मयूरतण्डुलैः सिद्धं पायसं भस्मकं जयेत् ।
विदारीस्वरसक्षीरसिद्धं वा माहिषोघृतम् ॥२८

॥ इति भस्मकः ॥

कल्कः प्रियंगुकोलास्थिमधुमुस्ताञ्जनैः कृतः ।
क्षौद्रलीढकुमारस्य छर्दितृष्णातिसारजित् ॥२९

यवानीकुटजारिष्टसप्तपर्णपटोलकैः ।
लेहः छर्दिमतीसारं ज्वरं वालस्य नाशयेत् ॥३०

पीतश्चन्दनचूर्णेन मधुनामलकीरसः ।
छर्दिं सदाहां सतृषं शीघ्रमेव विनाशयेत् ॥३१

हरीतक्याः कृत चूर्णं मधुना सह लेहयेत् ।
अधस्ताद् विहिते दोषे शीघ्रं छर्दिः प्रशाम्यति ॥३२

पटोलनिंबत्रिफलागुडूचीभिः सृतं जलम् ।
पीतं क्षौद्रयुतं छर्दिमम्लपित्तभवां हरेत् ॥३३

अश्वत्थवल्कलं शुष्कं दग्धं निर्वापितं जलम् ।
तज्जलं पानमात्रेण छर्द्दिं जयति दुर्ज्जयम् ॥३४

॥ इति छर्द्दिः ॥

शिलाज्जांजनमुस्तानां चूर्णं पीतं समाक्षिकम् ।
तृष्णाछर्द्दिमतीसारं शिशूनामुद्धतां हरेत् ॥३५

पिप्पली मधुकं जम्बूरसालतरुपल्लवाः ।
चूर्णोऽयं मधुना चेति तृष्णाप्रशमनः शिशोः ॥३६

दाडिमस्य तु बोजानि जीरकं नागकेशरं ।
चूर्णं च शर्कराक्षौद्रौ लेहस्तृष्णाहरः शिशोः ॥३७

हिंगुसैन्धवपालासचूर्णं माक्षिकसंयुतम् ।
लीढं निवारयत्याशु शिशूनामुद्धतां तृषाम् ॥३८

॥ इति तृषा ॥

सुवर्णं गैरिकं पिष्ट्वा मधुना सह लेहयेत् ।
शीघ्रं सुखमवाप्नोति तेन हिक्कार्दितः शिशुः ॥३९

शुण्ठीधातृकणाचूर्णं लेहयेन्मधुना शिशुम् ।
हिक्कानां शान्तये [त]द्वदेकं वा माक्षिकं सकृत् ॥४०

पिप्पलीरेणुकः क्वाथः सहिंगुः समधुः कृतः ।
हिक्का बहुविधा हन्यादिदं धन्वन्तरेर्वचः ॥४१

॥ इति हिक्का ॥

पिप्पली पिप्पलीमूलं नागरं मधुना लिहन् ।
कासं पंचविधं श्वासं शिशुराशु विनाशयेत् ॥४२

विहितो मधुना लेहो व्याघ्रीकुसुमकेशरैः ।
लीढादि (नि)र्नाशयत्याशु कासं पंचविधं शिशोः ॥४३

क्षौद्रयुक्ता तु गोक्षीरी[1] कासश्वासं व्यपोहति ।
बालस्य नियतं कृष्णा श्रृंगी वा मूलसंयुता ॥४४

एका श्रृंगी निहन्त्याशु मूलकस्य फलान्विता ।
घृतेन मधुना लीढा कासं बालस्य दुस्तरम् ॥४५

॥ इति कासश्वासौ ॥

बिडंगं मधुना लोढ्वा[2] पौष्करं वा सशिग्रुकम् ।
आशुकर्णीतवैकंचो कृमिभ्यो मुच्यते शिशुः ॥४६

मुस्तं बिडंगं मगधाशुपर्णी कम्पिल्लको दाडिमवल्कलेन ।
एतत् कृमिं सत्वरमुग्रवेगा क्षौद्रेण लीढा शमयत्यसंशयम् ॥४७

१. 'क्षुद्रयुक्तं च गोक्षीरां' इत्यन्यत्र । २, पुस्तके तु 'लीहो' इति पाठः ।

यवचूर्णं कृमिरिपु मगधा मधुना सह[1] ।
भक्षयेत् पाण्डुरोगघ्नं युंक्ति शूलहरं परम् ॥४८

॥ इति कृमिः ॥

प्रायो रजस्त्रैफलचूर्णयुक्तं गोमूत्रशुद्धं मधुनाऽवलीढम् ।
पाण्डू सकृसानुमान्द्यं शूलं स सोर्को शमयेदवश्यम् ॥४९

॥ इति पाण्डुः ॥

पथ्याऽश्वगंधा शबरी विदारी समं त्रिकंटश्च बलात्रयेण ।
पुनर्नवैतत्क्षयरोगमुग्रं क्षौद्रेण लीढं क्षपयत्यवश्यम् ॥५०

शिलाजतुव्योषविडंगलोहताप्याभयाभिर्विहितोऽवलेहः ।
सर्प्पिर्मधुभ्यां विधिना प्रयुक्तः क्षयं[2] विधत्ते सहसा क्षयस्य ॥५१

नवनीतं सिता क्षौद्रं लीढा क्षीरभुजं परम् ।
करोति पुष्टिं कायस्य क्षतक्षयमपोहति ॥५२

वासा महौषधिर्व्याघ्री गुडूची च सृतं जलम् ।
प्रपीतं शमयत्युग्रं श्वासकासक्षयं ज्वरान् ॥५३

॥ इति क्षयरोगः ॥

मागधी मागधं मूलं नागरं मिरचान्वितम् ।
क्षौद्रेण लीढं कफजं स्वरभेदं व्यपोहति ॥५४

यष्ट्याह्वजीवनीमूर्वा काकोलीद्वयसाधितम् ।
पयः पित्तोद्भवं हन्ति स्वरभेदं सुदारुणम् ॥५५

॥ इति स्वरभेदः ॥

जीरकद्वयमम्लीकवृक्षाम्लं दाडिमान्वितम् ।
शैलार्द्रकं रसं शीघ्रमरुचिं हन्ति दुष्करम् ॥५६

द्वे पले दाडिमादष्टौ षंडाव्योषपलत्रयम् ।
त्रिसुगंधि पलं चैकं चूर्णमेकत्र कारयेत् ॥५७
विचार्यैवं तु मतिमान्नौषधे च प्रयोजयेत् ।

॥ इति अरोचकम् ॥

---

१. पुस्तके तु 'सह मागधामधुनौ' इति पाठः । २. 'क्षपं' इति पुस्तके ।

कोलास्थी पद्मकोशीरं चन्दनं नागकेशरम् ।
लीढं क्षौद्रेण बालानां मूर्च्छानाशनमुत्तमम् ॥५८

द्राक्षामामलकं स्विन्नं पिष्ट्वा क्षौद्रेण संयुतम् ।
सर्वदोषभवं मूर्च्छां सज्वरां नाशयेद् ध्रुवम् ॥५९

सी(शी)ता प्रदेहा(या) मणयः सहाराः सेकावगाहा व्यजनस्य यस्य ।
लेह्यान्नपानादि सुगंधि शीतं मूर्छासु सर्वासु परम्प्रशस्तम् ॥६०

पद्मकं चन्दनं तोयमुशीरं श्लेष्मचूर्णितम् ।
क्षीरेण पीतं बालानां दाहं नाशयति ध्रुवम् ॥६१

कर्पूरचन्दनोशीरं लिप्तांगकदलीदलैः ।
प्रशस्ते संस्तरे धीमान् स्वापयेद्दाहपीडितम् ॥६२

परिषेकावगाहेषु व्यंजनानां च सेवनैः ।
शस्यते शिशिरं तोय तृषादाहोपशान्तये ॥६३

॥ इति दाहः ॥

शिरीषनक्तमालानां बीजैरंजितलोचनः ।
चेतोविकारं हन्त्याशु तापापस्मारतंत्रिका ॥६४

सिद्धार्थकवचाहिंगुशिवनिर्माल्यगन्धकैः ।
निर्मोकपिच्छलवणैर्नृकेशैः कुष्टसंयुतैः ॥६५
गृहशूकरमार्जारश्वविष्टारिष्टपत्रकैः ।
एभिर्घृतप्लुतैर्धूमः सर्वोन्मादग्रहापहः ॥६६

॥ इति उन्मादः ॥

कूष्माण्डकरसं दत्वा मधुकं परिपेषयेत् ।
अपस्मारविनाशाय तत्पिबेत्सप्तवासरान् ॥६७

॥ इति अपस्मारः ॥

गोसर्प्पिःसाधितं मूत्रं दधिक्षीरस(श ?)कृद्रसैः ।
चातुर्थिकज्वरोन्मादसर्वापस्मारनाशनम् ॥६८

पुनर्नवैरण्डजवातसिद्धिकर्पासजैरस्थिभिरारनालैः ।
स्विन्नैर [मी]भिस्त्विति षड्भिरेव स्वेदः समीरार्त्तिहरो नराणाम् ॥६९

॥ इति वातनाशः ॥

वासकस्वरसः पीतः सितामधुसमन्वितः ।
तथैव वटरोहाणां रक्तपित्तं विनाशयेत् ॥७०

पालाशपुष्पक्वाथेन वासायाः स्वरसेन च ।
चतुर्गुणेन संसिद्धं रक्तपित्तहरं घृतम् ॥७१

रसो दाडिमपुष्पाणां दूर्वायाः स्वरसोऽथवा ।
नस्येन नाशयेत्तूर्णं नासिकारक्तमुद्धतम् ॥७२

॥ इति रक्तपित्तः ॥

हिंगुमाक्षिकसिन्धूकैः पक्वां वर्त्ति सुवर्त्तिताम् ।
घृताभ्यक्तां गुदे दद्याद् गुदावर्त्तविनाशनम् ॥७३

॥ इति गुदावर्त्तः ॥

त्रिकटुकमजमोदा सैन्धवं जीरके द्वे,
समधरणधृतानामष्टमो हिंगुभागः ।
प्रथमकवलभुक्तं सर्पिषा चूर्णमेत-
ज्जनयति जठराग्नि वातगुल्मं निहन्ति ॥७४

॥ इति वातगुल्महरं हिंग्वष्टकम् ॥

शुंठीकणापुष्करकेतकीनां विधाय चूर्णं ककुभत्वचो वा ।
राष्मा(स्ना) निजं वा मधुनावलीढं हृद्रोगमेतत् शमयत्युदग्रम् ॥७५

॥ इति हृद्रोगः ॥

मेघा(धा ?)मृतानागरवाजिगंधाधात्रीत्रिकंटैर्विहितः कषायः ।
क्षौद्रेण पीतः शमयत्यवश्यं मूत्रस्य कृच्छ्रं पवनप्रसूतम् ॥७६

कुशेषुकासा शरदर्भयुक्ता प्रख्यातमेतत्तृणपंचमूलम् ।
[1]'उत्क्वाथ्य पीतं' मधुना च मिश्रं कृच्छ्रं सदाहं सरुजं निहन्ति ॥७७

यवक्षारयुतः क्वाथः स्वादकं कंटसंभवः[2] ।
पीतः प्रणाशयत्याशु मूत्रकृच्छ्रं कफोद्भवम् ॥७८

---

१. 'भक्ताध्यपितं' इत्यन्यत्र । २. 'कासंसंभवः' इत्यपि पाठः ।

स्वदंष्ट्राविहितः क्वाथः शिलाजतुसमन्वितैः ।
सर्वदोषोद्भवं हन्ति कृच्छ्रं नास्त्यत्र संशयः ।।७६

कषायोऽतिबलामूलत्रपुसीबीजसाधितः ।
शिलाजतुयुतं पीत्वा मूत्रकृच्छ्रं विनाशयेत् ।।८०

॥ इति मूत्रकृच्छ्रः ॥

पीत्वा दाडिमतोयेन विस्वै(षै)लाबीजजं रसः ।
मूत्रघातात्प्रमुच्येत सार वा लवणान्वितम् ।।८१

कर्पूरवर्त्ति मृदुना लिंगच्छिद्रे निधापयेत् ।
शीघ्रं तस्या महाघोरान्मूत्रबंधात्प्रमुच्यते।।८२

क्वाथैः किंशुकपुष्पाणि सेकस्तैरेव निर्मितः ।
उपनाहार्थं वा हन्ति मूत्राकृच्छ्रं सुदारुणम् ।।८३

॥ इति मूत्राघातः ॥

एरण्डतैलं सपयः पिबेद्यो गव्येन मूत्रेण तदेव वापि[1] ।
सगुग्गुलुं प्रौढरुजं प्रवृद्धां सवासवृद्धिं सहसा निहंति ।।८४

॥ इति ग्रंचकुरंडवृद्धिः ॥

वनकर्पासिकामूलं तंडुलैः सह योजितम् ।
पक्त्वापूपलिकां खादेदपचीनाशकारणम् ।।८५

॥ इति गण्डमाला ॥

कांचनारत्वचः क्काथस्तापे चूर्णावचूर्णित. ।
निर्गत्यान्तः[2]-प्रविष्टां तु मसूरी बाह्यतो नयेत् ।।८६

गर्दभीदुग्धपानेन तुलसीपत्रभक्षणात् ।
मसूरी बहिरत्वेति तत्क्षणान्नात्र संशयः ।।८७

भस्मनैकेचिदिच्छंति केचिद् गोमयरेणुना ।
कृमिपातभयाच्चापि धूपयेत्सुरसादिभिः ।।८८

वेदनादाहशान्त्यर्थं शिशूनां च विशुद्धये ।
मौक्तिकं काच्छपं प्रष्ट प्रवालं प्रपिबेन्नर. ।।८९

---

१. 'पीत्वा' इत्यपि संभाव्यः । २. 'निर्मलान्तः' इत्यपि पाठः ।

घृष्टं कुसुमतोयेन क्षुद्रशीतलिकां जयेत् ।
स्तोत्रमेतत्सदा पाठ्यं रोगिणोऽग्रे मुहुर्मुहुः ॥९०

॥ ॐ नमः शीतलायै । स्कन्द उवाच ॥

भगवन् देवदेवेश शीतलायाः स्तवं शुभम् ।
वक्तुमर्हस्यशेषेण विस्फोटकभयापहम् ॥९१

॥ ईश्वर उवाच ॥

वन्देऽहं शीतलां देवीं सर्वरोगापहारिणीम् ।
यामासाद्य निवर्त्तेत विस्फोटकभयं महत् ॥९२

शीतले शीतले चेति यो ब्रूयाद्दाहपीडितः ।
विस्फोटकभयं घोरं क्षिप्रं तस्य न जायते ॥९३

शीतला तोयपानेनाभिषेकान्नात्र संशयः ।
जप्त्वा ह्युदकमध्ये[1] तु ध्यात्वा पूजयते नरः ।
विस्फोटकभयं घोरं भयं तस्य न जायते ॥९४

शीतले ज्वरदग्धस्य पूतिगन्धगतस्य च ।
प्रनष्टचक्षुषः पुंसांस्त्वमाहु(यु)र्जीवनौषधम् ॥९५

शीतले तनुजान् घोरान्व्रणान्हरसि दुस्तरान् ।
विस्फोटकविवर्णानां त्वमेकामृतवर्षिणी ॥९६

गलगंडग्रहा रोगा ये चान्ये दारुणा नृणाम् ।
त्वदनुध्यानमात्रेण शीतले यान्त्यसंशयम् ॥९७

न मंत्रं नौषधं किञ्चित् पापरोगस्य विद्यते ।
त्वमेका शीतले त्राता नान्यां यास्यामि देवताम् ॥ ९८

मृणालतन्तुसदृशां नाभिहृत्पद्मसंस्थिताम् ।
यस्त्वां संचिन्तयेद्देवीं तस्य मृत्युर्न जायते ॥९९

अष्टकं शीतलायाश्च यः पठेन्मानवः सदा ।
विस्फोटकभयं घोरं कुतस्तस्य प्रजायते ॥१००

---

१. पुस्तके तु - 'यस्तोमुदकमध्ये' इति पाठः ।

श्रोतव्यं पठितव्यं च श्रद्धाभक्तिसमन्वितैः ।
उपसर्गविनाशाय परं स्वस्त्ययनं महत् ॥१०२
शीतलाष्टकमिदं देव न देयं यस्य कस्यचित् ।
दातव्यं हि सदा तस्मै भक्तिश्रद्धाहितो हि यः ॥१०३

इति स्कंदपुराणोक्तशीतलास्तोत्रम् ॥

शीतलेन जलेनैव चर्चया(चंचर्या) च समन्वितम् ।
हरिद्रां यः पिबेत्तस्य न दोषः शीतला भवेत् ॥१०४
शीतला सुक्रिया कार्या शीतला रक्षया सह ।
बध्नीयान्निम्बपत्राणि परो(रि)तो भवनान्तरे ॥१०५

चन्दनं वासको मुस्तं गुडूची द्राक्षया सह ।
एषां सितकषायस्तु शीतलाज्वरनाशनम् ॥१०६

कदाचिदपि नो कार्यमुच्छिष्टस्य प्रवेशनम् ।
स्फोटेष्वधिकदाहेषु रक्षारेणुकरो हितः ॥१०७

॥ इति शीतला ॥

इति श्रीकल्याणेन कृते बालतन्त्रे शीतलाचिकित्साकथनं नाम त्रयोदशः पटलः ॥

## चतुर्दशः पटलः

मनःशिलाचंदनलोध्रपद्मरसांजनं मुस्तनिशामयाख्यैः ।
सगैरिकाकर्कविहितप्रलेपो वहिः प्रसन्ने नयने करोति ॥१

ससैन्धवं लोध्रमथाज्यमृष्टं सौवीरपिष्टं सितवस्त्रबद्धम् ।
आश्च्योतनं तन्नयनस्य कुर्यात्कंडूं च दाहं च रुजं च हन्यात् ॥२

चंदनं मधुकं लोध्रं जातिपुष्पाणि गैरिकम् ।
प्रलेपो दाहरोगघ्नस्त्वक्ष्यभिष्यन्दनाशनः ॥३

शंखस्य भागाश्चत्वारस्तदर्द्धेन मनःशिला ।
मनःशिलार्धं मरिच मरिचार्द्धेन पिप्पली ॥४

वारिणा तिमिरं हन्ति अर्बुदं हन्ति मस्तुना ।
चिपिटं मधुना हन्ति स्त्रीक्षीरेण तदुन्नतम् ॥५

धत्तूरफलकर्पूरे निघृष्य मधुनांऽजयेत् ।
नेत्ररोगाः प्रणश्यन्ति सिंहत्रस्ता मृगा इव ।।६

॥ इति नेत्रम् ॥

हिंगुव्योषविडंगविद्युलवचारुक्तीक्ष्णगन्धायुतै-
लक्षाश्वेतपुनर्नवाकुटजकैः पुष्पोद्भवैः सौरसैः ।
इत्येभिः कटुतैलमेतदनलैर्मन्दे समूत्रं घृतम्,
पीतं नासिकया यथाविधि भवेन्नासामयेभ्यो हितम् । ।।७

।। इति नासिका ।।

कपित्थमातुलिंगाम्लश्रृंगवेररसैः शुभैः ।
सुखोष्णैः पूरयेत्कर्णं कर्णशूलोपशांतये ।।८
अर्कस्य पत्रं परिणामपीतं तैलेन लिप्तं शिखिनावतप्तम् ।
आपीड्य तोयं श्रवणे निषिक्तं निहन्ति शूलं बहुवेदनं च ।।९
घृष्टं रसांजनं नार्याः [1]क्षीरणा क्षौद्रसंयुतम् ।
प्रशस्यते शिरोजेऽपि सा स्रावे पूतिकर्णिका ।।१०
गुडेन शुंठी सह सिंधुजेन कृष्णाऽथवा केवलमच्छमम्भः ।
पयो घृतं वा विनिहंति शीघ्रं शिरोविरेकेण शिरोविकारान् ।।११

॥ इति शिरोरोगः ॥

मन्दोष्णं धारयेच्छुद्धं हिंगु दन्तान्तरे स्थितम् ।
तेन प्रणाशयत्याशु कृमिदंशो महागदः ।।१२
ओष्ठप्रकोपसंजाते रक्तमोक्षं च कारयेत् ।
त्रिफला खदिरं क्वाथे धावनं लेपनं तथा ।।१३
जातीपत्रामृताद्राक्षापाठादार्वीफलत्रिकैः ।
क्वाथः क्षौद्रयुतः शीतो गंडूषान् मुखपाकजित् ।।१४
पंचवल्कलकषायो वा त्रिफलाक्वाथ एव वा ।
सक्षौद्रः शमयत्याशु गंडूषैरास्यपाकजित्[2] ।।१५
पटोलं निम्बजं वाम्रमालती निंबपल्लवा ।
पंचवल्कलक्वाथोऽयं गंडूषैर्मुखपाकजित् ।।१६

---

१. 'क्षीरेण' इति संभाव्यः । २. पुस्तके तु 'पाकमास्यजित् ।'

दार्वीगुडूचीसुमनःप्रवालद्राक्षायवा सत्रिफला कषायैः ।
क्षौद्रेण युक्तः कवलग्रहोऽयं मुखस्य पाकं शमयत्युदीर्णम् ।।१७

वंध्याकर्कोटकीमूल तंडुलीमूलसंयुतम् ।
अगंदेयं महावीर्यः पीतः सर्वविषापहः ।।१८
शिखावलशिखाबाणपुंखावासववारुणी ।
लीढा घृतेन सर्वाणि विषाणि क्षपयेन्नरः ।।१९

।। इति सर्पादिविषः ।।

शिखिकुक्कुटबर्हणी सैन्धवं तैलसर्प्पिषी ।
धूमो हन्ति प्रयुक्तोऽयं कीटवृश्चिकजं विषम् ।।२०

पलाशबीजं रविदुग्धपिष्टं घृतेन पिष्ट्वा सशिरीषबीजम् ।
कृष्णाऽथवा हन्ति कृतोग्रपीडां विषं प्रलेपाद्भुवि वृश्चिकस्य ।।२१
अजाविकल्कः सह सैन्धवेन मध्वाज्यमिश्रो विहितः कदुष्णः ।
दंशे प्रलिप्तो दहनेन तुल्यां पीडां क्षणात् कृन्तति वृश्चिकस्य ।।२२

।। इति वृश्चिकः ।।

कर्षोन्मितं हाटकबाणपुंसां (पुङ्खा) मूलं पिबेत्तंडुलतोयमिश्राम् ।
सिफामथैकं कनकस्य युक्तां दुग्धेन नाशाय श्व(शु)नां विषस्य ।।२३

।। इति श्वानः ।।

असिततिलसमेतैः किं न भृंगस्य पत्रैः,
प्रतिदिनमुपयुक्तैः स्यान्नरः कामरूपः।
अमृतफलसितायै(ढ्यैः) चूर्णितैस्तैर्हि मासात्,
प्रहतगदसमूहः कृष्णकेशश्चिरायुः ।।२४

अथाश्वगंधा पयसार्द्धमासं घृतेन तैलेन सुखांबुना वा ।
कृशस्य पुष्टिं वपुषो विधत्ते बाल(ल्ये)शरीरस्य(स्थ) मिवांबुद(वृ)ष्टिम्।।२५

।। इति शरीरम् ।।

ग्रंथान् विलोक्य प्रचुरप्रयोगान् पद्यैः स्वकीयैः कतिचित्तदन्यैः ।
प्रोक्ता चिकित्सा रुचिरा शिशूनां तां देशकालादि समीक्ष्य कुर्यात् ।।२६

अहिच्छत्रान्वये जातः पण्डितैकशिरोमणिः ।
रामचन्द्रार्चनरतो रामदासः सतां प्रियः ।।२७

विद्वज्जनाल्हादकरो मनस्वी महीधरः सर्वजनाभिवन्द्यः ।
लक्ष्मीनृसिंहांघ्रिसरोजभृंगस्तदात्मजोऽभूद्विदितागमार्थः ॥२८

कल्याण इत्युद्गतनामधेयस्तदात्मजो ग्रंथवरान् विलोक्य ।
परोपकाराय बबन्ध तन्त्रं सतां समालोकनयोग्यमेतत् ॥२९

युगवेदरसाकास(सैकसं)मिते वर्ष नभे रवौ ।
पूर्णिमायां चकारेदं लिलेख च शिवालये ॥३०

स्वभावात्कृशकायो यः स्वभावादल्पपावकः ।
स्वभावादबलो यस्य तस्य नास्ति चिकित्सितम् ॥ ३१

इति श्रीकल्याणेन कृते बालतंत्रे नानाप्रयोगकथनं नाम
चतुर्दशः पटलः ॥१४॥ सम्पूर्णम् ।

सं. १८९४ शाके १७५२ मार्गशीर्ष कृष्णा ७ रवौ वासरे ।
लिप्यकृत पौकरमल ब्राह्मण लिखी झालरापाटणमध्य
॥ शुभं भवतु कल्याणमस्तु ॥

